Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2350-0611**

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48441 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 7.23

Research Highlights

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor
Dr. Kamlesh Kumar Singh
Assistant Professor
Department of Sociology
Pt. D.D.U. Govt. Girls P.G. College
Sevapuri, Varanasi

Volume - XIII **No. - 1** **(Jan. – Mar. 2026)**

(Part – VI)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Research Highlights - *A Referred Journal, Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 010
Mobile No. :- 09336924396
Email- researchhighlights1@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Research Highlights" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2350-0611

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** United Nations Professor of Plant Physiology, Department of Plant Sciences, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Pramod Rao,** Assistant Professor, Department of Hindi, VBS Purvanchal University, Jaunpur
- **Dr. Anil Pratap Giri,** Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

ଔ

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Shailendra Singh,** Professor and Head, Department of Sociology, J.S. University, Sikohabad, U.P.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Satyapal Yadav,** Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Brajesh Kumar Prasad,** Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Dewendra Pratap Tiwari,** Assistant Professor, Department of Political Science, Shree Lakshmi Kishori Mahavidyalaya (A Constituent Unit of BRA Bihar University, Muzaffarpur), Bihar

- **Dr. Hena Hussain,** Assistant Professor, Department of Psychology, Oriental College, Patna City (A Constituent Unit of Patliputra University, Patna), Bihar
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Vaibhav Kaithvas,** Assistant Professor, Department of Performing Art, Eklavya University, Sagar Road, Damoh, MP
- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Research Highlights,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor

CONTENTS

"Research Highlights"

➲	सामवेद कालीन संगीतः एक अध्ययन ***अंकित त्रिपाठी*** ***डॉ. सुजाता व्यास***	01-04
➲	गोविन्द मिश्र के कथा–साहित्य में सामाजिक मर्यादा और स्त्री पात्रों का अंतरद्वंद ***अंजु शर्मा*** ***डॉ. चित्तरंजन कुमार***	05-10
➲	डॉ. नामवर सिंह की आलोचना दृष्टि : बीसवीं सदी की वैचारिकी से इक्कीसवीं सदी के साहित्यिक विमर्श तक ***राहुल सिंह***	11-15
➲	कॉलेज के छात्रों की शैक्षिक रुचि एवं अध्ययन आदतों का शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभावः एक अध्ययन ***डॉ. ज्योति कुमारी***	16-20
➲	बाणभट्ट की आत्मकथाः एक समीक्षा ***डॉ. अनीता रानी***	21-24
➲	स्मृति ग्रंथों में विधि, न्याय एवं राजधर्म का अंतर्संबंध : एक आलोचनात्मक अध्ययन ***डॉ. अस्मिता कुमारी***	25-29
➲	ग्रामीण ऋणग्रस्तता पर स्वयं सहायता समूहों के महिलाओं की भूमिका ***डॉ. विजय लक्ष्मी कुमारी***	30-35
➲	हिंदी सिनेमा में प्रवासी भारतीय ***विपिन सिंह*** ***भूमिका विक्रम सिंह***	36-40
➲	भारतीय ज्ञान परम्परा के विभिन्न दार्शनिक आयाम ***डॉ. मीना परस्ते***	41-46
➲	कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री पात्रों की भूमिका ***चेतना सिंह*** ***डॉ. मधु पाठक***	47-50
➲	स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् कला एवं विज्ञान वर्ग की विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का तुलनात्मक अध्ययन करना ***आकांक्षा तिवारी*** ***प्रो. राजेश कुमार सिंह*** ***डॉ. अनुपम सिंह***	51-57
➲	विद्यानिवास मिश्र के निबंध साहित्य में परंपरा एवं संस्कृति ***श्री जितेन्द्र कुमार यादव***	58-63

➲	गिरिजा कुमार माथुर की वैयक्तिक काव्यधारा की अभिव्यक्ति ***ऋतुजा सिंह***	64-68
➲	आर्थिक परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा ***रितिक राजपूत***	69-73
➲	आधुनिक हिंदी कविता की प्रगति में वैचारिक दृष्टिकोण ***अंकिता पटेल***	74-77
➲	सूचना–प्रौद्योगिकी और नव मीडिया के दौर में हिंदी भाषा का समकालीन परिदृश्य ***उत्कर्ष त्रिपाठी***	78-87
➲	शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 एवं गुणात्मक प्राथमिक शिक्षा ***अल्पना वर्मा*** ***डॉ. चंद्रजीत यादव***	88-91

◀◀ ▶▶

सामवेद कालीन संगीतः एक अध्ययन

अंकित त्रिपाठी*
डॉ. सुजाता व्यास**

भारत की शास्त्र परंपरा में सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ जो हमें प्राप्त होते हैं वह हैं – वेद। वेदों की रचना किसने की और कितना समय लगा यह आज भी शोध का विषय है। विद्वतजन अपने अध्ययन से अनेक मत प्रस्तुत करते हैं, इन मतों में वेदों के अपुरुषेय होने का मत सर्वाधिक प्रचलित है ।

'वेद शब्द- 'विद् सत्तायाम्', 'विद्ज्ञाने', 'विद् विचारणे' और 'विदृलाभे' इन चार धातुओं से निष्पन्न होता है। इसका तात्पर्य है :- जिसकी सदैव सत्ता हो, जो अपूर्व ज्ञान प्रद हो, जो ऐहिक कमुष्मिक दोनों प्रकार के विचारों का कोश हो और जो लौकिक तथा लोकोत्तर लाभप्रद हो– ऐसे ग्रंथ को वेद कहते हैं। अर्थात वेद में सत्ता, ज्ञान, विचार और लाभ ये चारों गुण विद्यमान है'।[1]

वेदों की संख्या 04 है- ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद । सामवेद को पूर्ण रूपेण संगीत के ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया गया है। ऐसा मानना उचित भी है, क्योंकि ऋग्वेद के आंशिक सांगीतिक तत्वों के अतिरिक्त सामवेद से पूर्व ऐसा कोई ग्रंथ प्राप्त नहीं होता है, जिसमें संगीत पर समुचित प्रकाश डाला गया हो। सामवेद में निहित संगीत के तत्वों को समझने से पहले हम साम शब्द को समझ लेते हैं। साम शब्द की अनगिनत व्याख्याएं हमें ग्रंथों और विद्वानों से प्राप्त होती हैं, जिनमें से आचार्य सायण के अनुसार 'साम शब्द का तात्पर्य ऋकमंत्रों का क्रुष्ट आदि सप्त स्वरों में गान से है'।

सामवेद में वर्णित स्वर एवं ग्रामः- वैदिक काल में स्वरों के लिए **यम** शब्द का प्रयोग देखने को मिलता है। वैदिक युग में स्वरों की परंपरा १ स्वर से ७ स्वरों की यात्रा को प्रदर्शित करती है। यज्ञों में ऋचाओं के गायन के लिए केवल एक स्वर का प्रयोग किया जाता था। इस गान को आर्चिक कहा गया, यह गान पद्धति मंत्रों के उच्चारण,जप इत्यादि हेतु उपयुक्त मानी जाती थी। देवता तथा यजमानों के यश गान (गाथाओं) के लिए प्रयुक्त गान को गाथिक कहा गया, गाथिक में २ स्वरों का प्रयोग किया जाता था। ०३ स्वरों का प्रयोग जिस गान में किया गया वह सामिक कहलाया। सामिक शब्द साम संबंधी है, जिससे यह भान होता है कि साम गान हेतु प्रारम्भिक समय में ३ स्वरों का प्रयोग होता था। यह ०३ स्वर थे- प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय जो वर्तमान के स्वर ग्र, रे, सा के समान थे ऐसे प्रमाण हमें प्राप्त होते हैं। समय के साथ-साथ वैदिक कालीन सप्तक का विकास नैसर्गिक था, एक-एक कर सप्तक में नए स्वर जुड़ गए, चौथा स्वर जो प्राप्त हुआ उसे चतुर्थ(कुछ स्थानों पर स्वरांतर) की संज्ञा दी गई। स्वरांतर शब्द में अंतर का अर्थ यहाँ 'पास का' के रूप में प्रयुक्त है। कालांतर में साम गायकों को ३ और स्वरों की प्राप्ति हुई जिनके नाम - मंद्र, क्रुष्ट एवं अतिस्वार थे। अब इन स्वरों की स्थिति जानने से पहले तत्कालीन ग्राम के क्रम (आरोही अथवा अवरोही) की चर्चा अनिवार्य है।'साम विधान ब्राम्हण पर जो सायणभाष्य है उसके अध्ययन से इस विषय पर तृण मात्र भी संदेह नहीं रह जाता है कि साम वेद का ग्राम अवरोही क्रम का था। साम के स्वर निधन प्रकृति के कहलाते हैं, जिसका अर्थ यह है कि उसके स्वर स्वभावतः नीचे की ओर उतरते चले आते हैं'।[2] आइए अब पुनः स्वरों के क्रम की ओर चलते हैं, पँचवा स्वर जो हमें प्राप्त होता है वह है मंद्र, इस स्वर के नाम से ही यह ज्ञात होता है की जब इस स्वर की प्राप्ति हुई होगी तब यह स्वर सबसे नीचे का स्वर रहा होगा, अतः इसे अवरोही क्रम में चतुर्थ के बाद स्थान दिया गया। क्रुष्ट शब्द के लिए जब हम शब्द कोश पर नजर डालते है तो हमें प्राप्त होता है कि इस शब्द के कई अर्थों में एक अर्थ चीखना या चिल्लाना भी है, जो इस ओर ध्यान आकर्षित करता है कि क्रुष्ट स्वर के गायन हेतु प्राप्त पाँच स्वरों से अधिक जोर से आवाज लगाने कि जरूरत महसूस होती रही होगी। अतः इसका नाम क्रुष्ट रखा गया और इसका स्थान सबसे ऊपर कर दिया गया। अब बारी आती है अतिस्वार स्वर की। इस शब्द में अति, अधिक

* शोधार्थी, रा.तु.म.ना.वि., नागपुर
** शोध निर्देशक, रा.तु.म.ना.वि., नागपुर

की संज्ञा के रूप में है और स्वार शब्द स्वर के उच्चारण से संबंधित है, चूंकि इस स्वर की ध्वनि, प्राप्त सभी स्वरों से नीचे की थी, अतः इस स्वर का नाम अतिस्वार रखा गया होगा। इस प्रकार से साम संगीत के स्वरों का क्रम निम्नानुसार है :-

क्रुष्ट	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	मंद्र	अतिस्वार

अब इस ओर ध्यान जाता है कि लौकिक स्वरों की दृष्टि से ये कौन-कौन से स्वर रहे होंगे, नारदीय शिक्षा की टीका में भट्ट शोभाकर के अनुसार 'साम ग्राम का प्रथम स्वर क्रुष्ट था और वह लौकिक ग्राम का मध्यम स्वर था'। इससे एक बात सपष्ट है कि प्रथम और सबसे ऊंचा स्वर लौकिक ग्राम का मध्यम था। स्वरों के संदर्भ में जो श्लोक हमें नारदीय शिक्षा में प्राप्त होते हैं उस अनुसार साम ग्राम के लौकिक स्वरों का क्रम – म ग रे स ध नी प है।' किन्तु आजकल जो सामवेदी मिलते हैं वे सब निषाद के बाद ही धैवत का सीधा अवरोही क्रम मानते हैं'।[3] अतः स्वरों का क्रम म ग रे सा नी ध प मानना उचित है। कुछ विद्वानों का यह भी मानना हैं कि साम का एक वक्र ग्राम भी प्रचलन में था जिसके संदर्भ में नारदीय शिक्षा में वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रकार साम के स्वरों को निम्न सारणी से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है :-

वैदिक स्वर	लौकिक स्वर	नरदीय शिक्षा के अनुसार स्वर
क्रुष्ट	म	म
प्रथम	ग	ग
द्वितीय	रे	रे
तृतीय	सा	सा
चतुर्थ	नी़	ध
मंद्र	ध	नी़
अतिस्वार	प	प

श्रुति जाति-स्वर को विशेष प्रकार से लगाने के ढंग को श्रुति जाति कहा गया है। यहाँ श्रुति का अर्थ वर्तमान में प्रचलित 22 श्रुतियों से नहीं है, परन्तु पाँच श्रुति जातियाँ जो वर्तमान में प्रचलित हैं, वही नाम सामवेद में मिलते हैं। उनके चिह्न भी दिए गए हैं। दीप्ता का चिन्ह छोटे त्रिशूल के समान, आयता का चिह्न (^), करुणा का (*), ह्रस्व एवं मध्यम के लिए कोई चिह्न नहीं मिलते। भारतीय शिक्षा में इन श्रुति जातियों के प्रयोग का महत्त्व एवं किन लयों के साथ किस श्रुति जाति का प्रयोग होगा इसका बहुत प्रभावी वर्णन प्राप्त होता है।

साम वेद की शाखाएं- वेदों के पाठ भेद से जो स्वरूप उत्पन्न हुए उन्हे शाखाओं की संज्ञा दी गई है। भिन्न-भिन्न गुरु शिष्य परंपरा होने से यह पाठ भेद संभव थे। वर्तमान में इसे समझने के लिए सरल माध्यम है ख्याल के घराने। जैसे- ख्याल गायन में राग, स्वर, ताल तो एक सामन ही रहते हैं, परंतु घरानों या गुरु शिष्य परंपरा के कारण ख्याल प्रदर्शन में पर्याप्त भिन्नता हमें देखने को मिलती है। ठीक ऐसे ही साम में ऋचाएं तो वही रहती थी परंतु पाठ-भेद से वह नए स्वरूप में दिखती रही होंगी। वेदों की कुल ११३१ शाखाएं हमें प्राप्त होती है। जिसमें ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०१,सामवेद की १००० तथा अथर्ववेद की ०९ शाखाएं कही गई हैं। 'जैमिनी ग्राह्यसूत्र के तर्पण प्रकरण में १३ आचार्यों के नाम उपलब्ध हैं, ये विभिन्न शाखाओं के प्रवर्तक रहें है'।[4] वर्तमान समय में केवल ०३ आचार्यों की शाखाएं प्राप्त होती हैं- १. कौथुमीय २. राणायणीय ३. जैमिनीय।

गात्र वीणा- गात्र वीणा के संबंध में हमें दो मत प्राप्त होते हैं- १.'ऐतरेयारण्यक में सर्वप्रथम शरीर को दैवी वीणा माना क्यूंकि शरीर में ही मानवीय कंठ स्थति है अतएव यह कंठ ही गात्रवीणा है'।[5] २. 'हाँथ का अंगुलियों से युक्त पंजा गात्रवीणा कहलाता है। अंगुष्ठ के शिरोभाव में क्रुष्ट (पंचम), अंगुष्ठ के प्रथम पोर में (मध्यम), तर्जनी में गांधार, मध्यमा में ऋषभ, अनामिका में षडज, कनिष्ठा में धैवत तथा कनिष्ठा के नीचे मूल में निषाद की स्थिति है,अर्थात प,म,ग,रे,स,ध,नी, यह गात्र वीणा का है'।[6]

सामगीत के गायक एवं साम गान के भाग- सामगीत के तीन गायक होते है- प्रस्तोता, उद्गाता एवं प्रतिहर्ता। इनमें उद्गाता मुख्य गायक तथा शेष दो सहायक गायक होते हैं।

साम गान में भागों को भक्ति की संज्ञा दी गई है। भक्तियों की संख्या ०५ बताई गई हैं। जो इस प्रकार है- १. हुँकर/हिंकार २. प्रस्ताव ३. उद्गीथ ४. प्रतिहार ५. निधन। इन भक्तियों की प्रस्तुति क्रम के अनुसार गायक निर्धारित हैं। प्रथम भाग हुँकर एवं अंतिम भाग निधन का गायन तीनों गायकों द्वारा एक साथ किया जाता है, प्रस्ताव का गायन प्रस्तोता द्वारा किया जाता है, जो मंत्र का आरंभिक भाग है, उद्गाता उद्गीथ भाग का गायन करता है, जो मंत्र या गान का मुख्य भाग है तथा प्रतिहर्ता उद्गीथ की अंतिम पंक्ति से प्रतिहार भाग तक का गायन करता है। कुछ स्थानों पर दो अतिरिक्त भक्तियाँ आदि (उद्गीथ का पूर्व भाग) और उपद्रव(प्रतिहार का अंतिम भाग) के साथ ७ भक्तियाँ भी प्राप्त होती है। इस अनुसार क्रम हुँकार, प्रस्ताव, आदि, उद्गीथ, प्रतिहार,उपद्रव एवं निधन यह प्राप्त होता है। 'इससे गान-क्रिया पर विशेष अंतर नहीं पड़ता केवल इतना अंतर होता है कि उपद्रव भाग को उद्गाता गाता है, प्रतिहर्ता नहीं'।[7]

साम गान की स्वरलिपि- साम गान में स्वरांकन के लिए १ से ७ तक की अंकों का प्रयोग किया गया है। 'इन अंकों में से ७ अंक क्रुष्ट अर्थात उच्चतम स्वर के लिए प्रयुक्त होता है तथा १,२,३,४,५,६, क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मंद्र तथा अतिस्वार के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं।[8] शुद्ध अवस्था के लिए सामाक्षरों के ऊपर स्वरांकन किया जाता है तथा विकृत स्वरों के लिए सामाक्षरों के बीच में अंकों को लिखा जाता है। इन सप्त स्वरों के अतिरिक्त भी कुछ अन्य चिन्ह भी प्राप्त जोते हैं, जिनका विवरण निम्नलिखित है-

क्र.	चिन्ह	विवरण
१.	र	अक्षर के विशिष्ट स्वर को दीर्घ करना
२.	उ	उच्च स्वर
३.	क	नीच स्वर
४.	–	स्वर को बढ़ाना
५.	॰	पूर्ववर्ती वर्ण की अग्रिम अवग्रह तक जारी रखना
६.	ऽ	पूर्ववर्ती वर्ण की ध्वनि को जारी रखना

(परांजपे, २०१५, पृ. ९८)

साम संहिता- ऋगवेद की चयनित ऋचाओं से साम संहिता बनी है। साम वेद के मुख्यतः दो भाग मने गए हैं-आर्चिक एवं गान। आर्चिक के दो भाग हैं- पूर्वाचिक तथा उत्तरार्चिक।'पूर्वाचिक के ६ प्रपाठ हैं, जिनकी मूल ऋचाएं ही प्राप्त होती हैं, जो अग्नि, इन्द्र आदि देवताओं की स्तुति हैं। उत्तरार्चिक में ऋचाओं की धुन पर गाई जाने वाली प्रगाथों (तीन चार ऋचाओं का सम्मिलित सूक्त) का संग्रह प्राप्त होता है, इसके ९ प्रपाठ तथा समग्र मंत्र संख्या १२२५ है। गान, साम के स्वरमय रूप को कहा गया तथा इसके ४ प्रकार कहे हैं- १.ग्रामेयगान २.अरण्यकगान ३.उहगान ४.उह्यगान। पूर्वाचिक की ऋचा के आधार पर जो साम वे ग्रामेयगान कहलाये तथा जिन सामों का आधार आरण्यक संहिता थी वह अरण्यकगान कहलाए। उत्तरार्चिक की ऋचाओं के आधार पर जो साम बने वह ऊहगान तथा जो आरण्यकगान के आधार पर बनाए गए उन्हे उह्यगान कहा गया। जैमिनीय शाखा के गान एवं कौथुमीय शाखा के गान की सारणी निम्नानुसार है –

गान	जैमिनीय शाखा के गान	कौथुमीय शाखा के गान
ग्रामगेयगान	1232	1977
अरण्यगेयगान	291	294
ऊहगान	1802	1026
ऊह्यगान	356	205
योग	3681	3702

(सिंह, 2016 , पृ. 43)

साम विकार- साम योनि मंत्रों को संगीत के अनुकूल बनाने के लिए कुछ शाब्दिक परिवर्तन उनमें अपेक्षित थे। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए जो परिवर्तन मंत्रों में किए गए, उन्हीं शाब्दिक परिवर्तनों को साम विकार के नाम से जाना गया। इन विकारों की संख्या छह बताई गई है, जिनका विवरण निनमननुसार है:-

1. अक्षर- अक्षरों के परिवर्तन पर आधारित।
2. विश्लेष- यह किसी पद अथवा अक्षर का पृथक्करण होता है।
3. विकर्षण- ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ तथा दीर्घ के स्थान पर प्लुत का उच्चारण विकर्षण कहलाता है।
4. अभ्यास- किसी पद के बारम्बार उच्चारण के लिए यह संज्ञा दी गई है।
5. विराम- गान सौन्दर्य के लिए किसी स्थान पर ठहरना विराम कहलाता है।
6. स्तोभ- ऋचाओं के अतिरिक्त अगर जिन अक्षरों का प्रयोग गान में होता है वह स्तोभ कहलाते हैं। जैसे- हाउ, औहोवा इत्यादि।

प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सामवेद का संगीत केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं है, अपितु भारतीय शास्त्रीय संगीत का मूल आधार स्तंभ है। सामगान की अनूठी गायन शैली, सामविकार के माध्यम से शब्दों का संगीतमय रूपांतरण और स्वरों का गणितीय संयोजन इसकी अद्‌वितीय विशेषताओं को रेखांकित करता है। अतः साम-संगीत ने वैदिक काल में केवल आध्यात्मिक चेतना को जागृत नही किया, बल्कि आधुनिक राग-व्यवस्था, स्वर-विज्ञान और निबद्‌ध-गायन की नींव भी रखी। इस समृद्‌ध परंपरा का संरक्षण और अध्ययन आज के समय में भारतीय संगीत की जड़ों को समझने के लिए अत्यंत उपयोगी है।

संदर्भ सूची -

1. देवांगन तुलसीरम। *भारतीय संगीत शास्त्र* ।मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, द्वितीय संस्करण २०१०, पृ. २०।
2. ठाकुर जयदेव सिंह। *भारतीय संगीत का इतिहास* ।विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी,तृतीय संस्करण २०१६, पृ. ४५।
3. ठाकुर जयदेव सिंह। *भारतीय संगीत का इतिहास* ।विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी,तृतीय संस्करण २०१६, पृ. ५३।
4. देवांगन तुलसीरम। *भारतीय संगीत शास्त्र* ।मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, द्वितीय संस्करण २०१०, पृ. २३।
5. शर्मा, डॉ. महारानी।संगीत मणि भाग-१।श्री भुवानेश्वरी प्रकाशन, इलाहाबाद,२०१८ पृ.१०।
6. देवांगन तुलसीरम। *भारतीय संगीत शास्त्र* ।मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, द्वितीय संस्करण २०१०, पृ. ३५।
7. ठाकुर जयदेव सिंह। *भारतीय संगीत का इतिहास* ।विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी,तृतीय संस्करण २०१६, पृ. ६६।
8. परांजपे, शरच्चंद्र श्रीधर। *भारतीय संगीत का इतिहास*चौखम्बा विद्याभवन, २०१५,पृ.९७-९८
9. ठाकुर जयदेव सिंह. (2016). भारतीय संगीत का इतिहास . वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन
10. शरच्चंद्र श्रीधर परांजपे. (२०१५). भारतीय संगीत का इतिहास . वाराणसी: चौखम्भा विद्याभवन .

गोविन्द मिश्र के कथा–साहित्य में सामाजिक मर्यादा और स्त्री पात्रों का अंतरद्वंद

अंजु शर्मा*
डॉ. चित्तरंजन कुमार**

शोध सारांश :

प्रस्तुत शोध आलेख गोविन्द मिश्र के कथा-संसार के मध्यमवर्गीय जीवन की सच्चाई को उजागर करता है। जिसमें पिसती स्त्री की अस्मिता के अंतर्द्वन्द्व को बेहद संवेदनशीलता के साथ उजागर करती है। स्त्री सामाजिक मर्यादाओं को लांघना नहीं चाहती परन्तु उन मर्यादाओं में रहकर भी उसके भीतर एक द्वन्द्व चलता रहता है। साथ ही उसे लांघे बिना वह मुक्त नहीं हो सकती है। यह शोध आलेख आधुनिकता के तमाम दावों के बावजूद हमारे सामाजिक ढांचों को जो आज भी भीतर से रूढ़िवादी और पितृसत्तात्मक है, को बतलाता है। लेखक ने अपने विभिन्न कहानियों में जैसे - उपेक्षित, सुनंदो की खोली, माध्यम का सुख इत्यादि के माध्यम से यह बतलाया है कि समाज स्त्री की मर्यादा और चरित्र के मापदंड तो बड़ी कड़ाई से तय करता है लेकिन उसे एक स्वतंत्र इकाई या जीते-जागते मनुष्य के रूप में स्वीकार करने में हमेशा कतराता है। सामाजिक नियमों और पारिवारिक दबावों के तले दबी स्त्री अपनी स्वाभाविक वृत्तियों, आकांक्षाओं और इच्छाओं का गला घोंटने के लिए मजबूर है।

यह शोध आलेख स्त्री के पहचान-संकट और उसके अस्तित्व के लोप होने की समस्या से जुड़ा है। विवाह और सामाजिक बंधनों के भीतर स्त्री अक्सर अपनी मौलिक पहचान खो देती है और उसे केवल एक माध्यम या वस्तु के रूप में देखा जाने लगता है। जहाँ पुरुष स्वयं तो हर प्रकार की स्वतंत्रता का उपभोग करता है किन्तु स्त्री के किसी भी स्वतंत्र निर्णय या स्वाभाविक झुकाव को तुरंत अनैतिक या निर्लज्ज घोषित कर देता है। यहाँ तक की कामकाजी और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर स्त्रियों को भी घर के भीतर संरक्षक के नाम पर पुरुषों के अधीन ही रहना पड़ता है, जिससे उसकी आर्थिक आज़ादी महज एक छलावा बनकर रह जाती है। यह शोध आलेख समाज की सोई हुई चेतना पर गहरा प्रहार है। वास्तविक अर्थों में स्त्री-विमर्श और नारी की प्रगति तब तक अधूरी है, जब तक समाज पारंपरिक रूढ़ियों की दीवारों को तोड़कर स्त्री को पुरुषों के समकक्ष एक स्वतंत्र मनुष्य और एक अलग इकाई के रूप में स्वीकार नहीं कर लेता। यह शोध आलेख स्त्री के इसी आत्मसम्मान, संघर्ष और पहचान की खोज का एक अत्यंत प्रामाणिक और वैचारिक दस्तावेज है।

बीज शब्द : स्त्री विमर्श, पितृसत्तात्मक मानसिकता, नारी चेतना, सामाजिक मर्यादाएँ, सुनंदो की खोली, अंतर्द्वन्द्व, उपेक्षित, गोविन्द मिश्र।

"आखिर ज़िम्मेदारियों से भारी सिर को भी तो कहीं प्रश्रय चाहिए और ज़िम्मेदारियाँ भी तो वे जिनसे अच्छे-अच्छों का सिर चकरा जाए।"[1]

साहित्य जीवन के उन अनकहे कोनों की प्रतिध्वनि है, जहाँ बाहरी कोलाहल नहीं पहुँच पाता। प्रसिद्ध साहित्यकार गोविन्द मिश्र की कहानी 'संगीत और बर्तनों की खनक' मानव मन के गहन अंतर्द्वंद्व और पारिवारिक उत्तरदायित्वों के बीच पिसती हुई संवेदना का एक सजीव दस्तावेज़ है, जो मानव मन को झकझोर देती है। इसमें आधुनिक समाज में व्यक्ति की मानसिक स्थिति का यथार्थ चित्रण किया गया है। कहानी की

* शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, बीआरएबीयू, मुजफ्फरपुर
Email: sharmanju154@gmail.com
** शोध निर्देशक, सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभागाध्यक्ष ललित नारायण तिरहुत महाविद्यालय, बीआरएबीयू, मुजफ्फरपुर

मुख्य पात्रा नीना है। जब कोई व्यक्ति समाज और परिवार के स्तर पर अपनी योग्यताओं को तिलांजलि देकर केवल कर्त्तव्यों की वेदी पर खुद को समर्पित कर देता है तब उसके भीतर एक अनकहा सूनापन जन्म लेता है। यहाँ जिम्मेदारियों से भारी सिर केवल एक शारीरिक थकान का प्रतीक नहीं है बल्कि यह उस मानसिक बोझ को दर्शाता है जो किसी व्यक्ति को निरंतर भीतर ही भीतर खोखला करता रहता है। नीना के संदर्भ में, पिता की ढलती ठेकेदारी, भाई का आवारा निकल जाना और पूरे परिवार के भरण-पोषण की चुनौती ने उसे एक ऐसे चक्रव्यूह में धकेल दिया है, जहाँ उसका अपना कोई अस्तित्व शेष नहीं बचता है। प्रश्रय यानी सहारा या आश्रय की तलाश हर उस इंसान की स्वाभाविक वृत्ति है, जो जीवन की धूप में लगातार जल रहा हो। जब संकट की घड़ियाँ लंबी हो जाती हैं तो मनुष्य को एक ऐसे कंधे की तलाश होती है, जहाँ वह अपनी कमजोरियों को बिना किसी संकोच के प्रकट कर सके। नीना जैसी लड़कियाँ परिवार की रीढ़ तो बनती हैं लेकिन समाज उनकी भावनाओं के प्रति पूरी तरह उदासीन रहता है। पराग का पत्र आने पर वह प्रश्रय चाहती है परन्तु पारिवारिक जिम्मेदारियों के बोझ तले दबी है। छोटी बहन मीना की शादी के प्रस्ताव पर माँ कहती हैं कि "आदमी का रूप नहीं, गुण देखा जाता है। दूसरी शादी हुई तो क्या हुआ?" यह समाज की उस रूढ़िवादी सोच पर करारा प्रहार है, जहाँ लड़कियों को केवल एक ज़िम्मेदारी या बोझ समझा जाता है।

"सच बताओ, तुम मुझे नीच तो नहीं समझते, जो विवाहिता हिंदू स्त्री होकर भी तुम्हारी तरफ इतने निर्लज्ज ढंग से देखा करती हूँ। मुझे एक अजीब सा सुख मिलता है, बड़ी इच्छा होती है तुम्हें बताने की कि तुम्हारे माध्यम से मैं अपने बचपन के साथी दीपू को याद कर लेती हूँ। बिल्कुल तुम्हारी ही तरह था।"[2]

पारंपरिक सामाजिक मर्यादाओं और एक स्त्री के अंतर्मन के बीच चलने वाले मूक संघर्ष को बेहद संवेदनशीलता से उजागर करता है; जिसमें स्त्री की व्यक्तिगत भावनाओं और उसके अतीत को निर्लज्जता मान लिया जाता है क्योंकि यह रूढ़िवादी व्यवस्था पर एक गंभीर सवाल है। यहां हिन्दू स्त्री और विवाहिता जैसे शब्द गहरे सामाजिक दबाव को दर्शाते हैं। समाज एक विवाहित नारी से पूरी तरह अपनी इच्छाओं के दमन की अपेक्षा करता है। इसी वजह से वह स्त्री किसी अन्य पुरुष की ओर आकर्षित होती है तो वह गहरे आत्मग्लानि से घिर जाती है। उसे भय है कि समाज या वह व्यक्ति उसे नीच समझेगा। नैतिक मानदंड व्यक्ति के भीतर डर पैदा कर देते हैं।

हालांकि इस आकर्षण का आधार कोई अनैतिक वासना नहीं है बल्कि स्मृतियों का मनोविज्ञान है। वह स्त्री सामने वाले पुरुष के भोलेपन और शारीरिक बनावट में अपने बचपन के साथी 'दीपू' की छवि देखती है। मनोविज्ञान के अनुसार, मनुष्य अक्सर अपने वर्तमान में अतीत के उन खोए हुए पलों को खोजता है, जो कभी उसके जीवन का सबसे निश्छल और आनंदमयी हिस्सा थे। मानवीय भावनाएँ सामाजिक नियमों से कहीं अधिक जटिल और विशाल होती हैं। किसी अजनबी में अपने पुराने मित्र की छवि देखना कोई पाप नहीं बल्कि मानवीय हृदय की एक स्वाभाविक पुकार है।

"भाभी जी मेरे साथ चलिए। घुमा लाऊं।" - मैंने एक बार पूछा था।

"हाँ ले चलिए जी।"

"अरे पति-अति को मारो गोली, बोर हो गई मैं यहाँ रहते-रहते।"[3]

कहानी में मानवीय संबंधों की जटिलता, सामाजिक रूढ़ियों और स्त्री-पुरुष के बीच पनपने वाले मौन आकर्षण और उपेक्षा को बहुत ही सूक्ष्मता से उकेरा गया है। गोविन्द मिश्र की कहानी 'उपेक्षित' एक ऐसी रचना है जो ऊपरी तौर पर सामान्य दिखने वाले दाम्पत्य और सामाजिक ताने-बाने के भीतर सुलगती एक स्त्री की अंतर्भावनाओं को उजागर करती है। जहाँ स्त्री अपने पति की उपस्थिति को दरकिनार करते हुए कहती है यह पंक्ति केवल एक अनौपचारिक बातचीत का हिस्सा मात्र नहीं है बल्कि यह उस सामाजिक व्यवस्था और दांपत्य जीवन पर एक तीखा कटाक्ष है। जहाँ एक स्त्री खुद को 'उपेक्षित' और एकाकी महसूस करती है। जब एक

ग्रामीण पृष्ठभूमि से आई स्त्री को लेखक अपने साथ घूमने चलने का प्रस्ताव देता है, तब उसका सहज उत्तर यह बतलाता है कि वह अपने दैनिक जीवन की एकरसता और अपने पति के अति रूढ़िवादी या उदासीन व्यवहार से थक चुकी है। जब वह कहती है कि "पति-अति को मारो गोली" तब यह लगता है कि स्त्री के भीतर कहीं-न-कहीं एक अदृश्य विद्रोह पनप रहा है। पहाड़ों और डाक-बंगले के उस बेहद शांत और एकांत माहौल में, जहाँ बाहरी दुनिया से संपर्क लगभग शून्य है। वह स्त्री भावनात्मक रूप से कितनी अकेली है क्योंकि वह कहती है कि "बोर हो गई मैं यहाँ रहते-रहते।"

लेखक और उस स्त्री के बीच एक अजीब सा झिझक-मुक्त रिश्ता बनने लगता है। वह स्त्री जो कभी आँचल से सिर ढँकने और लजाने की मर्यादाओं में बँधी थी। वह धीरे-धीरे उन बंधनों को तोड़कर अपनी सहजता में आने लगती है। जब किसी व्यक्ति को अपनी शादीशुदा जिंदगी में वह मानसिक और भावनात्मक स्थान नहीं मिलता, जिसकी वह हकदार है तो वह किसी तीसरे व्यक्ति की सामान्य सी सहानुभूति या संगति में भी एक अनूठी खुशी तलाशने लगती है। व्हिस्की और बीयर के घूँटों के बीच दोनों के बीच का संवाद मात्र एक भटकाव नहीं बल्कि दो अजनबियों के बीच एक अनकहे खालीपन को भरने की कोशिश है। 'उपेक्षित' केवल शारीरिक अलगाव नहीं है बल्कि एक ही छत के नीचे रहते हुए भी दो दिलों का आपस में न जुड़ पाना है। एक स्त्री चाहे कितनी भी सीधी या ग्रामीण परिवेश की क्यों न हो, उसकी अपनी एक स्वतंत्र चेतना, इच्छाएं और घुटन होती है। जब तक समाज और परिवार इसकी इस चेतना को स्वीकार नहीं करेंगे, तब तक ऐसी उपेक्षित भावनाएं किसी न किसी रूप में अपनी अभिव्यक्ति ढूंढती रहेंगी।

"वह जो औरत की कमाई खाता था और वह जो इज्जतखोर बनता था... एक लिजलिज, दूसरा फुसफुस!"[4]

गोविन्द मिश्र उस सदियों पुरानी पितृसत्तात्मक मानसिकता पर करारा प्रहार करते हैं, जहाँ पुरुष अपनी मर्दानगी और इज्जत का महल स्त्री के त्याग और उसके श्रम की नींव पर खड़ा करता है। कहानी में विमला का संघर्ष उस समाज का आईना है। जहाँ पुरुष अक्सर स्त्री की आर्थिक या भावनात्मक शक्ति पर निर्भर होता है। बाहर वह इज्जतखोर बनकर घूमता है अर्थात अपनी इज्जत खुद नहीं कमाता बल्कि स्त्री को अपनी संपत्ति मानकर उसकी मर्यादा के नाम पर अपनी धौंस जमाता है। सबसे बड़ी विडंबना यह है कि पुरुष घर के भीतर स्त्री के श्रम या उसकी कमाई पर पल रहा होता है। वही समाज के सामने उसकी स्वतंत्रता का सबसे बड़ा दुश्मन बन जाता है। लेखक ने पुरुष के इस दोहरेपन वाले स्वभाव को 'लिजलिज' और 'फुसफुस' जैसे प्रतीकात्मक शब्दों से नवाजा है। 'लिजलिज' होना उस चरित्रहीनता का प्रतीक है जिसमें न कोई दृढ़ता है और न कोई नैतिकता। जब पुरुष अपनी जिम्मेदारी निभाने में नाकाम होता है और स्त्री को ही ढाल बनाकर छिपता है तो उसका व्यक्तित्व इसी तरह चिपचिपा और घृणास्पद हो जाता है। 'फुसफुस' होना उस खोखले अहंकार को दिखाता है, जो केवल बातों में है, जिसमें कोई मानवीय गरिमा नहीं बची है। एक कामकाजी या संघर्षशील स्त्री को हमेशा समाज की 'इज्जत' की कसौटी पर परखा जाता है, जबकि उस पर निर्भर रहने वाला पुरुष तमाम कमजोरियों के बावजूद 'संरक्षक' का तमगा लिए घूमता है। विमला जैसी पात्रों के माध्यम से यह प्रश्न उठता है कि क्या स्त्री की अपनी कोई स्वतंत्र पहचान है या वह केवल पुरुष की इज्जत ढोने वाली एक वाहक मात्र है? आज का 'स्त्री विमर्श' केवल बाहर निकलने या कमाने की आजादी तक सीमित नहीं होना चाहिए। असली विमर्श उस मानसिकता को बदलने में है, जो स्त्री को वस्तु और पुरुष को उसका 'मालिक' मानती है। जब तक समाज में इज्जतखोर पुरुष मौजूद रहेंगे, तब तक स्त्री की प्रगति केवल कागजों तक सीमित रहेगी। गोविन्द मिश्र यह समझाना चाहते हैं कि स्त्री को अपनी लड़ाई केवल अधिकारों के लिए नहीं बल्कि उन 'परजीवी' संबंधों से मुक्ति के लिए भी लड़नी होगी जो उसे भीतर से खोखला कर रहे हैं।

"वर्षों पहले किरण में ललक उठी थी। कोई उसे बस थोड़ा सा खींच ले। किसी में बँधकर वह थोड़ा सा

उठ सकती, फिर तो वह अपने-आप ही उठती चली जाएगी।"[5]

इसमें स्त्री विमर्श केवल बाहरी अधिकारों की बात नहीं करता बल्कि वह उस आंतरिक 'आजादी' की तड़प को दिखाता है, जो सहानुभूति और सहारे की मोहताज बना दी गई है। किरण की त्रासदी यह नहीं है कि वह गरीब है बल्कि वह एक ऐसे चक्रव्यूह में है जहाँ उसकी अपनी पहचान भाइयों की 'खोली' को बचाए रखने की कोशिशों में कहीं विलीन हो गई है।

'सुनंदो की खोली' में किरण पाँच भाइयों के बीच अकेली बहन है। वह खोली (कमरा) की धुरी है लेकिन विडंबना यह है कि उसी धुरी पर वह पीस रही है। लेखक ने उसकी सुंदरता, उसकी कोमलता (गुलाबी साड़ी, गौर वर्ण) और उसके द्वारा चिड़ियों को दाना खिलाने के दृश्यों के माध्यम से उसकी संवेदनशीलता को दर्शाया है परन्तु सामाजिक और पारिवारिक ढाँचों के कारण उसकी आवाज कहीं गुम हो जाती है।

मध्यमवर्गीय परिवारों में स्त्री की शिक्षा, उसके सपने और उसकी खुशी अक्सर घर के पुरुष तय करते हैं। यहाँ किरण और उसके पाँच भाई एक ही कमरे में रहते हैं। इस सीमित स्थान में एक युवती की निजता और स्वतंत्रता शब्द बेमानी हैं। वह उठने के लिए किसी का खिंचाव और सहारा चाहती है। उसकी प्रतिभा और ललक पारिवारिक अपेक्षाओं के बीच महानगर के खोली (कमरे) में दम तोड़ देती है।

"वे लगातार अपने कमजोर शरीर से दीवार को मारती रहतीं, जैसे ठोकर दे-देकर उसे गिरा देना चाहती हों।"[6]

कहानी के केंद्र की दीवार पुरुषवादी अहंकार और संपत्ति के उस अधिकार का प्रतीक है, जिसने सदियों से स्त्री के साझे संसार को खंडित किया है। जब घर की बुजुर्ग स्त्री अपने कमजोर शरीर से उस दीवार पर प्रहार करती है, तो वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध एक गहरी असहमति और विद्रोह व्यक्त करती है।

कहानी की मुख्य पात्रा का नाम 'रामसजीवन की मां' कहकर पुकारा जाना है। स्त्री का अपना नाम नहीं होना (पहचान लोप होना) स्त्री-विमर्श है। जब समाज स्त्री को एक मनुष्य की बजाय केवल संबंधों की एक कड़ी मान लेता है, तब उसके भीतर का मनुष्य एक मूक पीड़ा में जीने लगता है। उस दीवार को ठोकर मारना वास्तव में उस व्यवस्था को ठोकर मारना है, जिसने उसे उसके नाम, उसकी सहेलियों और उसके बचपन के उस आँगन से अलग कर दिया। जहाँ वह कभी स्वतंत्र थी। जब एक स्त्री की आवाज़ को परिवार और समाज में अनसुना कर दिया जाता है तो उसकी देह विद्रोह का माध्यम बनती है। लेखक ने माँ के शरीर को कमज़ोर कहा है, जो उस स्त्री की सामाजिक स्थिति को दर्शाता है कि उसके पास कोई शक्ति नहीं है लेकिन उसी कमज़ोर शरीर से दीवार को मारना एक शक्तिशाली संदेश देता है। भले ही वह स्त्री उस दीवार को गिरा न दे लेकिन वह उसे मानसिक रूप से स्वीकार नहीं करती। यह पुरुषवादी सत्ता के मुँह पर तमाचा है। जो यह समझते हैं कि दीवार खड़ी करके स्त्रियों की दुनिया को नियंत्रित कर सकते हैं। यह दीवार आज भी समाज में किसी-न-किसी रूप में मौजूद है - कभी परंपरा के नाम पर, कभी मर्यादा के नाम पर। जब तक ये दीवारें रहेंगी, स्त्री का उस दीवार को गिराने का संघर्ष जारी रहेगा।

"बहू ने सीधे-सीधे उन्हें ही सुनाकर कह दिया कि वह या उसका पति क्यों जिम्मेदारी उठाएँ, कैलाश बाबू की संतानों की, वे जानें जिन्होंने पैदा किए हैं।"[7]

स्त्री न तो घर जोड़ने वाली जादुई छड़ी है और न तो घर तोड़ने वाली खलनायिका। वह एक मनुष्य है जिसकी अपनी सीमाएँ हैं। बहू इतना असुरक्षित महसूस करती है कि उसे 'ना' कहने के लिए कठोर बनना पड़ा। आधुनिक समय में रक्त संबंध निवेश और लाभ के तराजू पर तौले जाते हैं। स्त्री विमर्श के संदर्भ में बहू का कड़ा रुख हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि क्या रिश्तों की सारी नैतिकता केवल बहू के कंधों पर टिकी होनी चाहिए? 'इजाजत नहीं' कहानी में कैलाश बाबू जीवन भर दूसरों के लिए दौड़ते रहे। कहानी का एक मोड़ उस द्वंद्व की ओर ले जाता है जहाँ पितृसत्ता और स्त्री की व्यक्तिगत स्वतंत्रता आपस में टकराते हैं। जब

कैलाश बाबू का बड़ा बेटा (डॉक्टर) अपनी पत्नी के प्रभाव में आकर अपने छोटे भाई-बहनों की जिम्मेदारी लेने से मना कर देता है, तो आमतौर पर समाज इसे 'घर फोड़ने वाली बहू' के नजरिए से देखता है लेकिन स्त्री-विमर्श से देखें तो मुद्दा केवल पारिवारिक कलह का नहीं बल्कि स्त्री की अस्मिता और उसकी सीमाओं के निर्धारण का भी है। एक आदर्श बहू से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने ससुराल के हर सदस्य की सेवा और आर्थिक बोझ को सहर्ष स्वीकार करे। कैलाश बाबू ने अपने बेटे को पढ़ाने में अपनी पूरी जमापूंजी लगा दी थी और उनका यह सोचना सही था कि बेटा अब नींव बनेगा लेकिन बहू का संवाद– "वह या उसका पति क्यों जिम्मेदारी उठाएं..."– अत्यंत कठोर प्रतीत होता है, जो एक बड़े सामाजिक सच को उजागर करता है।

स्त्री विमर्श के दृष्टिकोण से अक्सर त्याग और ममता के नाम पर स्त्री पर अतिरिक्त पारिवारिक बोझ डाल दिया जाता है। बहू का यह तर्क कि "जिन्होंने पैदा किया, वे जिम्मेदारी उठाएं," पितृसत्तात्मक व्यवस्था के उस 'अनकहे अनुबंध' को चुनौती देता है जहाँ एक स्त्री शादी करके केवल एक व्यक्ति से नहीं बल्कि पूरे कुनबे की देखभाल करने वाली बनकर रह जाती है।

वहीं दूसरी ओर कैलाश बाबू की बेटी का मौन भी एक स्त्री-विमर्श है। वह एक ऐसी वस्तु की तरह है जिसे पिता अपनी पेंशन और मकान गिरवी रखकर 'निपटाना' चाहता है। एक तरफ वह बहू है जो अपनी शर्तों पर बोल रही है और दूसरी तरफ वह बेटी है जिसका कोई अपना स्वर ही नहीं है। यह विरोधाभास आधुनिक समाज की स्त्रियों की दो अलग-अलग स्थितियों को दर्शाता है।

"क्यों कोई नहीं लड़ा कि लड़कियों का स्कूल यहीं, इसी इमारत में रहेगा– क्यों ज़रूरत पड़ी एक नई जगह स्कूल खोलने की, जबकि इससे बेहतर कोई जगह हो ही नहीं सकती।"[8]

समाज और सत्ता की प्राथमिकताओं में स्त्री और उसकी शिक्षा हमेशा अंतिम पायदान पर रहती है। मनुष्य विकास की अंधी दौड़ में उन मानवीय मूल्यों को खोते हुए देख रहे हैं जो कभी समाज की नींव थे। जब लेखक कहते हैं कि 'लड़कियों के स्कूल के लिए कोई नहीं लड़ा' तो वह समाज की उस पितृसत्तात्मक मानसिकता पर चोट करता है जो स्त्री की प्रगति के प्रतीकों को बचाने के लिए कभी सड़कों पर नहीं उतरतीं। स्त्री विमर्श के नज़रिये से देखें तो किसी भी शहर या कस्बे में 'कन्या विद्यालय' केवल एक इमारत नहीं होती है। कहानी में उल्लेख है कि उस स्कूल की इमारत को बचाने के बजाय उसे खाली कराकर सरकारी अफसरों और भू-माफियाओं की नजरों में चढ़ा दिया गया। यह इस बात का प्रतीक है कि जब भी लाभ और अधिकारों के बीच संघर्ष होता है तो सबसे पहले स्त्री के हिस्से के संसाधनों की बलि चढ़ाई जाती है। स्त्री विमर्श केवल घरेलू हिंसा या बराबरी की बात नहीं है। यह उन स्थानों को बचाए रखने का भी संघर्ष है जो महिलाओं के लिए सुरक्षित और सुलभ हैं। जब एक बेहतरीन और केंद्रीय जगह से लड़कियों के स्कूल को हटाकर किसी दूरदराज या असुरक्षित जगह भेज दिया जाता है तो असल में उनकी शिक्षा की राह में रोड़े अटकाए जाते हैं।

"एक ही घर में अलग-अलग पीढ़ियों की दो औरतों का एक-सा भाग्य?"[9]

इसमें समय तो बदल जाता है परन्तु स्त्री का 'नियत भाग्य' नहीं बदलता। कहानी का मुख्य पात्र जब अपनी बहू उमा को देखती है तो उसे अपना ही बीता हुआ कल और उमा का आने वाला कल एक जैसा नज़र आता है। एक ही घर में अलग-अलग पीढ़ियों की दो औरतों का एक-सा भाग्य? आधुनिक समय में क्या शिक्षा और आधुनिकता ने वास्तव में स्त्री की नियति को बदला है?

एक स्त्री किसी की बहन, बेटी, पत्नी या साली इत्यादि होती है। हमें स्त्री को केवल एक भूमिका में नहीं, एक इकाई के रूप में स्वीकार करना चाहिए। यदि स्त्रियाँ केवल सहनशीलता को ही अपना आभूषण मानती रहेंगी तो पीढ़ियों तक उनका भाग्य एक जैसा ही रहेगा। सच्ची मुक्ति घर की चारदीवारी को लांघने की है। जब तक स्त्रियाँ एक-दूसरे के दुःख में अपनी नियति और उसे बदलने का साहस नहीं करेंगी, तब तक यह छाया उनका पीछा करती रहेगी। माँ का उमा को घर से बाहर निकलने के लिए कहना एक नयी दिशा लाना है।

"उस दिन घर के बाहर खड़ा वह चुपचाप उसे घर से निकलते देख रहा था। आज वह बाहर खड़ी है और वह चुपचाप उसे जैसे घर के अंदर जमा बैठा देख रहा है, देखता है और वीभत्स हँसी हँसता है...

'निकलकर कहाँ जाएगी तू'[10]

कहानी 'कहाँ जाएगी' में गोविन्द मिश्र कहते हैं कि स्त्री की मुक्ति शारीरिक रूप से घर छोड़ देना नहीं है बल्कि असली चुनौती उस वीभत्स हँसी और मानसिक साये से मुक्त होना है जो सालों बाद भी पीछा करते हैं। इस कहानी में मानवीय संवेदनाओं और एक टूटते हुए दाम्पत्य के बेहद मार्मिक क्षणों को दर्शाया गया है, जहाँ एक स्त्री अपने आत्मसम्मान के लिए घर की चौखट लाँघती है लेकिन अतीत का साया उसका पीछा नहीं छोड़ता।

पति अपने पिता के पेंशन एवं पैतृक संपत्ति पर ऐश करते हुए निठल्ला रहता है और बार-बार पत्नी को निकल जा... निकल जा का ताना देता है। उसके लिए पत्नी की तरह न रहने की बात कहता है अर्थात् उसे समर्पण और शारीरिक रूप से उपलब्ध रहने की बात करता है। स्त्री विमर्श की दृष्टि से अपनी देह और अपने श्रम पर अपना अधिकार पुनः प्राप्त करना एक बड़ा कदम है।

उस दिन घर के बाहर खड़ा वह चुपचाप उसे घर से निकलते देख रहा था। उसे लगता है कि वह अकेली औरत समाज में कहाँ जाएगी? उसका यह मौन उसकी जीत का नहीं बल्कि उसके पुरुष अहंकार का प्रतीक है। लेकिन समय के साथ वह पुरुष अकेलेपन, अंधविश्वास, शराब की लत एवं एक ढोंगी तांत्रिक के चक्कर में पड़कर अपनी जीवनलीला समाप्त कर लेता है। स्त्री घर से निकलते समय कहती है 'मुड़कर न देखूँगी' लेकिन पति के मर जाने पर घर बेचने उसे आना ही होता है तब उसे महसूस होता है कि उसका पति घर के अंदर जमा बैठा है और वह घर के बाहर खड़ी है। वीभत्स हँसी के साथ उससे उसका पति पूछ रहा है– 'निकलकर कहाँ जाएगी तू!' 'मुड़कर न देखना' उस घर की तरफ अतीत के उस बोझ को उतार फेंकने की प्रक्रिया है जो उसे अपराधबोध में बाँधना चाहती थी। भले ही एक मृत पुरुष अपनी वीभत्स हँसी के साथ घर के अंदर जमा बैठा रहे लेकिन उस स्त्री का घर की दहलीज लाँघ जाना ही उसकी अंतिम विजय है। यह कहानी केवल एक स्त्री के घर छोड़ने की नहीं बल्कि यह उस जड़ मानसिकता की मृत्यु और एक चेतना के पुनर्जन्म की कहानी है। पुरुष वर्ग का यह कहना या सोचना - "निकलकर कहाँ जाएगी तू"! - स्त्री की स्वतंत्रता पर एक प्रश्नचिह्न लगाता है। यह वह मानसिक बेड़ी है जिसे वह पुरुष मृत्यु के बाद भी उस स्त्री के पैरों में डालना चाहता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

(1) मिश्र गोविन्द, कहानी समग्र भाग-1, किताब घर प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली, वर्ष 2016, संगीत और बर्तनों की खनक, पृष्ठ संख्या - 68
(2) माध्यम का सुख, वहीं पृष्ठ संख्या - 73
(3) उपेक्षित, वहीं पृष्ठ संख्या - 205
(4) मिश्र गोविन्द, कहानी समग्र भाग-2 किताब घर प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली, वर्ष 2016, खुद के खिलाफ, पृष्ठ संख्या - 122
(5) सुनँदो की खोली, वहीं पृष्ठ संख्या - 344
(6) राम सजीवन की माँ, वहीं पृष्ठ संख्या - 385
(7) मिश्र गोविन्द, कहानी समग्र भाग-3, किताब घर प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली, वर्ष 2016, इजाजत नही, पृष्ठ संख्या-37
(8) मुझे बाहर निकालो, वहीं पृष्ठ संख्या - 198
(9) छाया, वहीं पृष्ठ संख्या - 334
(10) पत्रिका हंस, संजय सहाय (संपादक), पूर्णांक - 448 वर्ष - 38, अंक: 7 फरवरी 2024, अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-2, कहाँ जाएगी! गोविन्द मिश्र, पृष्ठ संख्या-26

डॉ. नामवर सिंह की आलोचना दृष्टि : बीसवीं सदी की वैचारिकी से इक्कीसवीं सदी के साहित्यिक विमर्श तक

राहुल सिंह*

शोध सार :-

डॉ. नामवर सिंह हिंदी साहित्य की आलोचना परंपरा में एक ऐसे आलोचक के रूप में प्रतिष्ठित है जिन्होंने आलोचना को ना तो ग्रंथ केंद्रित अकादमिक अनुशासन में रहने दिया और न ही किसी एक विचारधारा की यांत्रिक व्याख्या तक सीमित रखा बल्कि उनकी आलोचना दृष्टि - साहित्य, समाज, इतिहास, और सौंदर्यशास्त्र के बीच एक जीवंत और सतत संवाद की प्रक्रिया है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य डॉ. नामवर सिंह की आलोचना दृष्टि तथा हिंदी साहित्य में उनकी भूमिका का एक समग्र, संश्लेषित और वर्तमानपरक विमर्शों का अध्ययन प्रस्तुत करना है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि उनकी आलोचना आज के साहित्य और वैचारिक संदर्भ में भी क्यों प्रासंगिक बनी हुई है।

यह शोध पत्र इस मूल मान्यता से आरंभ होता है कि नामवर सिंह की आलोचना किसी एक सिद्धांत या आलोचनात्मक पद्धति का अनुगामी नहीं है उन्होंने आलोचना को अंतिम निर्णय देने वाली सत्ता के रूप में नहीं बल्कि रचना को समझने और खुली प्रक्रिया के रूप में विकसित किया है। उनके अनुसार आलोचना का कार्य रचना के सौंदर्य शास्त्र, ऐतिहासिक विचार का सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों के बीच संतुलन स्थापित करना है इस दृष्टि से उनकी आलोचना न केवल साहित्यिक मूल्यांकन करती है बल्कि पाठकों में भी साहित्य को समझने की आलोचनात्मक चेतना का भी विकास करती है।

मूल शब्द :- आलोचना, सौंदर्यशास्त्र, साहित्यिक मूल्य, आंदोलनधर्मिता और साहित्यिक विमर्श।

नामवर सिंह की जन्मशताब्दी हिंदी साहित्य और आलोचना की जीवंत वैचारिक परंपरा को समझने और पुनर्विचार करने का महत्वपूर्ण अवसर है। आज के डिजिटल, सतही और तात्कालिक विमर्शों के दौर में नामवर सिंह का चिंतन साहित्यिक मूल्य, बौद्धिक अनुशासन और आलोचना की सामाजिक भूमिका को पुनः स्थापित करने में विशेष रूप से प्रासंगिक प्रतीत होता है। बीसवीं सदी की वैचारिकी के संदर्भ में नामवर सिंह की आलोचना दृष्टि का अध्ययन भी इस शोध-पत्र का एक केंद्रीय पक्ष है। बीसवीं सदी हिंदी साहित्य में वैचारिक आंदोलनों की सदी रही है, जिसमें छायावाद, प्रयोगवाद, प्रगतिवाद एवं नई कविता जैसे आंदोलनों जैसे प्रवाहों ने साहित्य की दिशा को प्रभावित किया। नामवर सिंह मार्क्सवादी विचारधारा की गहराई से जुड़े रहे, किंतु उन्होंने कभी भी उसे जड़ और अपरिवर्तनीय सिद्धांत के रूप में स्वीकार नहीं किया। वे साहित्य में विचारधारा की भूमिका को स्वीकार करते हैं, परंतु रचना की स्वायत्तता और कलात्मक स्वतंत्रता को भी उतना ही आवश्यक मानते हैं।

डॉ. नामवर सिंह को केवल एक आलोचक के रूप में देखना उनके व्यक्तित्व को अधूरा समझना होगा। मूल रूप से वे पहले शिक्षक थे और उनकी पूरी आलोचना-दृष्टि उसी अध्यापन कर्म से निर्मित होती है। उनकी वैचारिक जलवायु, भाषा की सहजता और बहस की शैली—सब कुछ कक्षा के अनुभवों से आकार लेता है। इसलिए नामवर सिंह की आलोचना को समझने के लिए उनके शिक्षक रूप को केंद्र में रखना अनिवार्य है। अध्यापन को नामवर सिंह किसी नौकरी की तरह नहीं देखते थे, जिसे जॉइनिंग और रिटायरमेंट के बीच मापा जाए। उनके लिए अध्यापन एक सतत बौद्धिक प्रक्रिया थी, जो जीवन भर चलती रहती है। शिक्षक होना उनके लिए एक पद नहीं, बल्कि एक दृष्टि थी। यही कारण है कि सेवानिवृत्ति के बाद भी उनका अध्यापन समाप्त नहीं हुआ; वह उनके व्याख्यानों, संवादों और आलोचनाओं में लगातार उपस्थित रहा।

* गेस्ट फैकल्टी, हिंदी विभाग, एन. सी. डब्लू. ई. ब, आर्यभट्ट कॉलेज, दक्षिण परिसर, दिल्ली विश्वविद्यालय – 110021.
ईमेल :– rahulsingh.hindi.du@gmail.com

अध्यापन की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह व्यक्ति को खुला रखता है। यह खुलापन ही नामवर सिंह के व्यक्तित्व में दिखाई देता है। इसी खुलेपन के कारण उनमें कई बार अंतर्विरोधों की परछाइयाँ भी दिखती हैं, लेकिन वे अंतर्विरोध उनके अध्यापन और आलोचना में दब नहीं जाते, बल्कि सोच को और समृद्ध करते हैं। वे किसी एक निष्कर्ष पर टिककर नहीं रुकते थे, बल्कि प्रश्नों को खुला छोड़ देते थे, आलोचना, चर्चा एवं वाद विवाद को खुला छोड़ने का यही गुण उनकी आलोचना को जीवंत बनाता है।

नामवर सिंह की आलोचना की सबसे बड़ी विशेषता नवीनता की पहचान है। वे रचनाओं में नयापन विषय या रूप में नहीं, बल्कि नए ढंग से सोचने की क्षमता में खोजते हैं।नामवर सिंह हिंदी आलोचना के पहले ऐसे आलोचक थे जिन्होंने रचनाओं की नवीनता को नए ढंग से सोचने की क्षमता के रूप में पहचाना जो आलोचना के परिवेश में प्रसिद्धि की ओर अग्रसर रहा। उनसे पहले आलोचना अधिकतर विषय या शैली तक सीमित रहती थी, लेकिन नामवर सिंह ने रचना के भीतर छिपे नए अंशों पर ध्यान केंद्रित किया। वे यह दिखाते हैं कि हर महत्वपूर्ण रचना अपने समय को नए दृष्टिकोण से देखने का अवसर देती है। इसी विशेषता को उन्होंने अपनी आलोचना का केंद्र बनाया। यही कारण है कि उनकी आलोचना रचना को बार-बार नए अर्थों में समझने की राह खोलती है जो वर्तमान 21वीं शताब्दी में भी आकर्षक है जो विभिन्न समकालीन विमर्शों में पूर्णतः देखा जा सकता है

डॉ. नामवर सिंह ऐसे शिक्षक थे जिन्होंने कक्षा को सूचना देने की जगह संवाद और बहस का मंच बनाया। उनकी कक्षाओं में विद्यार्थी केवल श्रोता नहीं होते थे, बल्कि सोचने और सवाल करने वाले सहभागी होते थे। कक्षा एवं जीवन की घटनाओं का अन्तःक्रियात्मक होना प्रभावशाली बनाता है। उनकी मौखिक आलोचना — जो व्याख्यानों और संवादों के माध्यम से सामने आयी जिसने हिंदी आलोचना को एक लोकतांत्रिक स्वर दिया। आलोचना उनके यहाँ किताबों में बंद नहीं रहती थी, बल्कि जीवित संवाद के रूप में सामने आती थी। नामवर सिंह यह भली-भाँति समझते थे कि शिक्षण प्रविधि केवल स्कूल स्तर के लिए आवश्यक नहीं है, बल्कि उच्च शिक्षा में उसका महत्व और भी अधिक है। वे एक दुर्लभ शिक्षक थे और साथ ही साहित्य के गंभीर शिक्षाशास्त्री भी। उनके द्वारा बनाए गए पाठ्यक्रमों और उनके अध्यापन-तरीकों में यह स्पष्ट दिखता है कि वे साहित्य को कैसे पढ़ाया जाना चाहिए, इस पर गहरी समझ रखते थे। बतौर शिक्षक उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे अपनी विद्वता और प्रचंड बौद्धिकता को कक्षा पर हावी नहीं होने देते थे। कई बार छात्रों को यह विश्वास ही नहीं होता था कि वे इतने बड़े विद्वान से पढ़ रहे हैं। यह उनकी एक खास कला थी, जिससे वे विद्यार्थी और विद्वता के बीच की दूरी को कम कर देते थे। वे छात्रों को विद्वता के आतंक से बचाते थे और उन्हें सहज बनाए रखते थे। वे जानते थे कि जब तक विद्यार्थी सहज नहीं होगा, तब तक सीखने की प्रक्रिया संभव नहीं है। यही शिक्षकीय गुण उनकी आलोचना-दृष्टि में भी दिखाई देता है। वे आलोचना को डराने वाली विद्वत प्रक्रिया नहीं बनने देते थे। उनकी आलोचना पाठक को शामिल करती है, उससे संवाद करती है और उसे सोचने के लिए प्रेरित करती है। आज के समय में, जब साहित्य का मूल्यांकन अक्सर लोकप्रियता, प्रचार और त्वरित प्रतिक्रियाओं के आधार पर होने लगा है, नामवर सिंह की आलोचना-दृष्टि इसलिए अधिक प्रासंगिक हो जाती है क्योंकि वह साहित्य को समाज, जीवन और विचार से जोड़कर देखती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नामवर सिंह के आलोचक रूप की शक्ति उनके शिक्षक रूप से आती है। अध्यापन ने उनकी आलोचना को मानवीय, संवादधर्मी और खुला बनाया। शिक्षक होने का लाभ यह हुआ कि उनकी आलोचना न तो बंद कमरे की विद्वता बनी और न ही किसी एक विचारधारा की कठोर व्याख्या। वह निरंतर प्रश्न करती हुई, सोच को विस्तार देने वाली और पाठक को बौद्धिक रूप से सक्रिय करने वाली आलोचना बनी।

आंदोलनधर्मिता और साहित्य के संबंध पर नामवर सिंह की दृष्टि का भी इस शोध-पत्र में विश्लेषण किया गया है। हिंदी साहित्य में आंदोलनों ने साहित्य को सामाजिक सरोकारों से जोड़ा, किंतु कई बार आंदोलनधर्मिता साहित्यिक गुणवत्ता पर हावी होती दिखाई देती है। नामवर सिंह ने इस प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए यह स्पष्ट किया कि साहित्य का उद्देश्य किसी आंदोलन का घोषणापत्र बनाना नहीं है। साहित्य की शक्ति उसकी वेदना - संवेदना, कलात्मकता और मानवीय सच्चाई में निहित होती है। यह विचार आज के समय में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जब साहित्यिक विमर्श

अक्सर तात्कालिक प्रतिक्रियाओं और वैचारिक शोर तक सीमित हो जाता है। इक्कीसवीं सदी में स्त्री, दलित और आदिवासी साहित्य ने उन वर्गों की आवाज़ को सामने रखा है जिन्हें लंबे समय तक अनदेखा किया गया। नामवर सिंह की आलोचना इन रचनाओं को केवल पहचान के आधार पर नहीं, बल्कि उनके सामाजिक अर्थ और मानवीय मूल्यों के आधार पर समझने पर ज़ोर देती है। उनकी संवादधर्मी आलोचना इन विमर्शों को व्यापक सामाजिक समानता और न्याय के संदर्भ में रखती है। इसलिए आज के साहित्यिक विमर्श में उनकी आलोचना-दृष्टि बहुत उपयोगी और आवश्यक है।

नामवर सिंह पर चर्चा करते समय यदि 'विजयदेव नारायण साही' और 'रामविलास शर्मा' का उल्लेख न हो, तो आलोचना अधूरी रह जाती है। यह स्थिति वैसी ही प्रतीत होती है जैसे अंधेरे में पंजीरी फाँक ली जाए—स्वाद तो मिलता है, पर अर्थ स्पष्ट नहीं होता। 'साही' की बौद्धिक तीक्ष्णता और रामविलास शर्मा की 'ऐतिहासिक-वैचारिक दृढ़ता', नामवर सिंह की आलोचना-दृष्टि को समझने की ज़मीन तैयार करती हैं। इन तीनों आलोचकों के आपसी संवाद, सहमति और असहमति से ही हिंदी आलोचना की वास्तविक तस्वीर उभरती है। इसलिए नामवर सिंह को संदर्भों से काटकर नहीं, बल्कि इस आलोचनात्मक परंपरा के भीतर रखकर ही ठीक से समझा जा सकता है।

नामवर सिंह की आलोचना-दृष्टि के अनुसार आलोचना का सामाजिक और साहित्यिक दायित्व यह है कि वह रचना को जीवन से काटकर न देखे, बल्कि उसे उसके ऐतिहासिक, सामाजिक और वैचारिक संदर्भों में परखे। यह सर्व विदित है कि आलोचना साहित्यिक मूल्यों की रक्षा करते हुए समाज की चेतना को जाग्रत करने का कार्य करती है। डॉ. नामवर सिंह आलोचक होने के साथ-साथ एक ऐसे शिक्षक थे जिन्होंने कक्षा को संवाद, बहस और आलोचनात्मक चिंतन का मंच बनाया। उनकी मौखिक आलोचना ने हिंदी आलोचना को जीवंत और लोकतांत्रिक स्वरूप प्रदान किया। आज के हिंदी साहित्य में नामवर सिंह की आलोचना-दृष्टि इसलिए भी जरूरी है क्योंकि वह आलोचना को केवल किताबों तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उसे समाज और जीवन से जोड़ती है। आज साहित्य का मूल्यांकन अक्सर लोकप्रियता, प्रचार और त्वरित प्रतिक्रियाओं के आधार पर होने लगा है। ऐसे समय में नामवर सिंह की आलोचना हमें गहराई से पढ़ने, सोचने और समझने की सीख देती है। उनकी आलोचना संवाद पर आधारित है, जिसमें सहमति और असहमति दोनों का महत्व है। वे साहित्य को सामाजिक जिम्मेदारी से जोड़ते हैं और आलोचना को दिशा देने वाला विवेक मानते हैं। इसी कारण उनकी आलोचना आज भी हिंदी साहित्य के लिए आवश्यक और प्रासंगिक है।

नई कविता को समझने में नामवर सिंह की आलोचना-दृष्टि विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। उन्होंने नई कविता को केवल व्यक्तिवादी या आत्मकेंद्रित कविता कहकर अस्वीकार नहीं किया, बल्कि उसके भीतर मौजूद सामाजिक चेतना और प्रगतिशील सोच को सामने रखा। उनके अनुसार नई कविता अपने समय के यथार्थ से जुड़ी हुई कविता है, जो आधुनिक मनुष्य के अनुभवों, संघर्षों और बेचैनियों को अभिव्यक्त करती है। 'कविता के नए प्रतिमान' में नामवर सिंह यह स्पष्ट करते हैं कि आधुनिक कवि का सत्य यथार्थ की सतह पर नहीं, बल्कि उसके भीतर गहराई से उतरकर खोजा जाता है। उन्होंने कविता के रूप और अंतर्वस्तु को अलग-अलग नहीं माना, बल्कि दोनों के बीच जीवंत और ऐतिहासिक संबंध को स्वीकार किया। उनके लिए कविता का सौंदर्य केवल शिल्प में नहीं, बल्कि विचार और संवेदना की गहराई में निहित है। नामवर सिंह ने नई कविता में बोलचाल की भाषा, यथार्थ से जुड़ी संवेदना और नैतिक साहस को विशेष महत्व दिया। उनका मानना था कि कविता की भाषा जितनी जीवन के निकट होगी, वह उतनी ही प्रभावशाली और अर्थपूर्ण बनेगी। इसी दृष्टि से उन्होंने नई कविता के भावबोध और भाषा के नए मानदंड स्थापित किए। प्रगतिशील दृष्टिकोण नामवर सिंह की आलोचना का मुख्य आधार है। वे कविता में सामाजिक-आर्थिक यथार्थ और लोकजीवन की उपस्थिति को आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार कविता तभी सार्थक होती है, जब वह आम आदमी के जीवन-अनुभवों और संघर्षों से जुड़ती है। परंपरा के संदर्भ में भी नामवर सिंह की दृष्टि संतुलित और रचनात्मक है। 'छायावाद' विषयक अध्ययन में उन्होंने परंपरा के सृजनशील तत्वों की पहचान की और छायावाद को राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति के रूप में स्थापित किया। इस प्रकार उनकी आलोचना नई कविता को परंपरा से काटकर नहीं, बल्कि उससे संवाद करते हुए समझने की दृष्टि प्रदान करती है।

14 डॉ. नामवर सिंह की आलोचना दृष्टि : बीसवीं सदी की वैचारिकी से इक्कीसवीं सदी के साहित्यिक विमर्श तक

इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य विविध अस्मिताओं और नए सामाजिक प्रश्नों के कारण पहले से अधिक व्यापक और जटिल दिखाई देता है। अब साहित्य का मूल्यांकन केवल शिल्प, भाषा या रस की दृष्टि से नहीं किया जाता, बल्कि यह भी देखा जाता है कि वह समाज के किन अनुभवों और किन वर्गों को स्वर देता है। दलित, स्त्री, आदिवासी और LGBTQ समुदाय से जुड़े विमर्शों ने साहित्य को नई संवेदना और नई दृष्टि प्रदान की है। दलित लेखन ने अनुभव की सच्चाई और सामाजिक अन्याय के प्रश्न को केंद्र में रखा, जिसकी सशक्त परंपरा ओमप्रकाश वाल्मीकि जैसे रचनाकारों से जुड़ती है। स्त्री विमर्श ने साहित्य में स्त्री की भूमिका, उसकी स्वतंत्रता और उसकी आत्म-अभिव्यक्ति को नए सिरे से समझने की दिशा दी; अनामिका जैसी रचनाकारों ने इस चेतना को वैचारिक गहराई दी। आदिवासी विमर्श ने विकास, विस्थापन और सांस्कृतिक पहचान के प्रश्न उठाए, जबकि LGBTQ विमर्श ने लैंगिक विविधता और अस्मिता को साहित्यिक चर्चा का वैध हिस्सा बनाया। इन सबके बीच यह स्पष्ट होता है कि साहित्य अब बहु-स्वरीय समाज की अभिव्यक्ति है। ऐसे समय में डॉ. नामवर सिंह की आलोचना-दृष्टि विशेष रूप से सार्थक प्रतीत होती है, क्योंकि वे रचना को उसके सामाजिक, ऐतिहासिक और मानवीय संदर्भों में पढ़ने का आग्रह करते हैं। उनकी दृष्टि किसी एक विचारधारा तक सीमित न होकर संवाद और संतुलन पर आधारित है, जो इन नए विमर्शों को समझने में उपयोगी आधार प्रदान करती है।

इक्कीसवीं सदी में डिजिटल माध्यमों और वैश्वीकरण ने साहित्य की प्रकृति भी बदल दी है। अब लेखन और पाठन दोनों की प्रक्रिया अधिक खुली और तात्कालिक हो गई है। आलोचना का क्षेत्र भी अकादमिक सीमाओं से बाहर निकलकर व्यापक पाठक-वर्ग तक फैल गया है। इस परिवर्तित परिदृश्य में विचारधारात्मक आग्रह अक्सर तीखे रूप में सामने आते हैं, जिससे ध्रुवीकरण की स्थिति बनती है। यहाँ नामवर सिंह की आलोचना-दृष्टि मार्गदर्शक बनती है, क्योंकि वे साहित्य को न तो किसी आंदोलन का घोषणापत्र मानते हैं और न ही उसे समाज से काटकर देखते हैं। उनके यहाँ विचार और सौंदर्य, प्रतिबद्धता और कलात्मकता—इनके बीच संतुलन आवश्यक है। यही संतुलित दृष्टि आज के दलित, स्त्री, आदिवासी और अन्य सभी विमर्शों के अध्ययन में सहायक सिद्ध होती है। उनकी संवादधर्मिता हमें यह सिखाती है कि असहमति के भीतर भी समझ की संभावना होती है और आलोचना का उद्देश्य अंतिम निर्णय सुनाना नहीं, बल्कि विचार की प्रक्रिया को आगे बढ़ाना है। इसलिए इक्कीसवीं सदी के साहित्यिक विमर्शों के बीच डॉ. नामवर सिंह की आलोचना-दृष्टि केवल ऐतिहासिक विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान की बौद्धिक आवश्यकता के रूप में भी सामने आती है।

नामवर सिंह की आलोचना-दृष्टि को लेकर हिंदी साहित्य में समय-समय पर अनेक असहमतियाँ और तीखी बहसें सामने आई हैं। कुछ विद्वानों ने उनकी विचारधारात्मक प्रतिबद्धता पर प्रश्न उठाए, तो कुछ ने उनके मूल्यांकन के मानदंडों को सीमित या पक्षधर बताया। यह भी कहा गया कि वे कुछ रचनाकारों और धाराओं को अधिक महत्व देते हैं, जबकि अन्य को अपेक्षाकृत कम। लेकिन इन असहमतियों को केवल विरोध के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। दरअसल, यही असहमति उनकी आलोचना-दृष्टि की जीवंतता का प्रमाण भी है। जिस विचार से कोई असहमत ही न हो, वह अक्सर जड़ या अप्रासंगिक हो जाता है। साहित्य में बहस तभी संभव होती है जब सामने कोई सशक्त और प्रभावशाली दृष्टि मौजूद हो।

"आकाश से चाहे जितनी असहमतियाँ हों, घर तो उसी के नीचे बनते हैं" — इस भाव को यदि साहित्यिक संदर्भ में समझें, तो स्पष्ट होता है कि नामवर सिंह ने हिंदी आलोचना को एक ऐसा वैचारिक आकाश दिया, जिसके भीतर नई पीढ़ियाँ अपनी-अपनी व्याख्याएँ गढ़ती रहीं। उनसे असहमत होते हुए भी आलोचक उसी बौद्धिक परंपरा के भीतर संवाद करते हैं, जिसे उन्होंने व्यवस्थित रूप दिया। असहमति यहाँ विघटन नहीं, बल्कि विस्तार का माध्यम बनती है। जब हम कहते हैं कि "मुर्दों से असहमतियाँ नहीं होतीं", तो उसका अर्थ यह है कि जिन विचारों में जीवन और प्रभाव होता है, उन्हीं से टकराव और प्रश्न जन्म लेते हैं। इसलिए नामवर सिंह की आलोचना-दृष्टि के प्रति मौजूद मतभेद यह सिद्ध करते हैं कि उनका विचार आज भी साहित्यिक विमर्श में सक्रिय है। असहमति की उपस्थिति ही संभावना की पहचान है—वह नए प्रश्नों को जन्म देती है, पुराने निष्कर्षों की पुनर्रचना करती है और साहित्य को निरंतर गतिशील बनाए रखती है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि डॉ. नामवर सिंह की आलोचना दृष्टि केवल अपने समय की उपज नहीं है, बल्कि वह आज के साहित्यिक और वैचारिक संदर्भों में भी पूर्णतः प्रासंगिक है। युग परिवर्तन के परिणामस्वरूप उनके विचार, दृष्टिकोण तथा रचना शक्ति का निरंतर विस्तार होता रहा। उनकी आलोचना हमें यह सिखाती है कि साहित्य को समझने के लिए परंपरा और नवीनता, सौंदर्य और विचार, रचना और समाज—इन सभी के बीच सतत संवाद आवश्यक है। यही संवाद उनकी आलोचना को आज भी जीवंत, विचारोत्तेजक और शोधोचित बनाता है। समग्र रूप से यह शोध-पत्र डॉ. नामवर सिंह के साहित्यिक और आलोचनात्मक अवदान का दृष्टिकोण एवं मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। उन्होंने आलोचना को रचनात्मक प्रक्रिया का सहयात्री बनाया और साहित्य तथा समाज के बीच एक सशक्त सेतु का निर्माण किया। उनकी आलोचना ने निश्चित रूप से हिंदी साहित्य को अकादमिक संकीर्णता से बाहर निकालकर व्यापक बौद्धिक विमर्श से जोड़ा जिसके लिए संपूर्ण हिंदी साहित्य से संबंधित इकाई उनके प्रति विशेष भाव रखती है।

संदर्भ सूची :-

1. डॉ नामवर सिंह, कविता के नए प्रतिमान(1968)
2. डॉ नामवर सिंह, दूसरी परंपरा की खोज (1982)
3. आशीष त्रिपाठी (संपादकीय) कविता की ज़मीन और ज़मीन की कविता – 2010 (लिखित समीक्षात्मक निबंधों का संकलन)
4. नामवर सिंह : आलोचना की दूसरी परम्परा (2002) – सं॰- कमला प्रसाद, सुधीर रंजन सिंह, राजेंद्र शर्मा।
5. आशीष त्रिपाठी(संपादकीय), किताबखाना, डॉ नामवर सिंह।
6. भारत यायावर (संपादकीय), आलोचना के रचना पुरुष : नामवर सिंह (2003) – (पुस्तक रूप में वाणी प्रकाशन से)
7. आशीष त्रिपाठी (संपादकीय), आलोचना और संवाद – 2018 (लिखित समीक्षात्मक निबंधों का संकलन)

कॉलेज के छात्रों की शैक्षिक रुचि एवं अध्ययन आदतों का शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभावः एक अध्ययन

डॉ. ज्योति कुमारी*

सारांश

शिक्षा मानव जीवन के सर्वांगीण विकास का आधार है। विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि अनेक कारकों से प्रभावित होती है, जिनमें शैक्षिक रुचि तथा अध्ययन आदतें प्रमुख हैं। शैक्षिक रुचि विद्यार्थी की सीखने की प्रेरणा, विषय के प्रति लगाव तथा ज्ञान अर्जन की उत्सुकता को दर्शाती है, जबकि अध्ययन आदतें अध्ययन के प्रति अपनाई जाने वाली नियमित प्रक्रियाओं एवं व्यवहारों को व्यक्त करती हैं। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य कॉलेज के छात्रों की शैक्षिक रुचि एवं अध्ययन आदतों का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव का विश्लेषण करना है।

अध्ययन में यह पाया गया कि जिन विद्यार्थियों में शैक्षिक रुचि अधिक होती है, वे अध्ययन में अधिक समय एवं ऊर्जा निवेश करते हैं, जिससे उनकी उपलब्धि बेहतर होती है। इसी प्रकार सुव्यवस्थित अध्ययन आदतें, जैसे समय प्रबंधन, नियमित पुनरावृत्ति, अध्ययन सामग्री का संगठन तथा आत्म–अनुशासन, शैक्षणिक सफलता में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। अध्ययन यह भी दर्शाता है कि शैक्षिक रुचि एवं अध्ययन आदतों के मध्य सकारात्मक सहसंबंध पाया जाता है। जिन छात्रों की अध्ययन आदतें अच्छी होती हैं, उनमें विषयों के प्रति रुचि भी अधिक पाई जाती है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कॉलेज स्तर पर छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि को बढ़ाने के लिए शैक्षिक रुचि एवं अध्ययन आदतों के विकास पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

शब्द कुंजी : शैक्षिक रुचि, अध्ययन आदतें, शैक्षणिक उपलब्धि, उच्च शिक्षा, कॉलेज छात्र, अधिगम, प्रेरणा, समय प्रबंधन।

प्रस्तावना

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं बौद्धिक विकास का आधार मानी जाती है। यह केवल ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम नहीं है, बल्कि व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण, नैतिक मूल्यों के विकास, सामाजिक समायोजन तथा जीवन कौशलों के संवर्धन का भी महत्वपूर्ण साधन है। आधुनिक युग में शिक्षा का महत्व और अधिक बढ़ गया है क्योंकि आज का समाज ज्ञान, विज्ञान एवं तकनीक पर आधारित है। ऐसे परिवेश में विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि न केवल उनके व्यक्तिगत विकास का सूचक है, बल्कि राष्ट्र की प्रगति का भी एक महत्वपूर्ण संकेतक है।

शैक्षणिक उपलब्धि से आशय विद्यार्थियों द्वारा अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों में प्राप्त किए गए ज्ञान, कौशल, दक्षता तथा उपलब्धियों से है। सामान्यतः इसे परीक्षा परिणामों, अंकों, ग्रेडों अथवा शैक्षणिक प्रदर्शन के माध्यम से मापा जाता है। शैक्षणिक उपलब्धि अनेक कारकों से प्रभावित होती है, जिनमें बुद्धिलब्धि, प्रेरणा, पारिवारिक वातावरण, सामाजिक–आर्थिक स्थिति, विद्यालयीय संसाधन, शिक्षण पद्धति, अध्ययन आदतें तथा शैक्षिक रुचि प्रमुख हैं। इन कारकों में शैक्षिक रुचि एवं अध्ययन आदतों का विशेष महत्व है क्योंकि ये दोनों तत्व सीधे तौर पर विद्यार्थियों की अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

शैक्षिक रुचि एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा है जो किसी विषय, गतिविधि या अध्ययन क्षेत्र के प्रति व्यक्ति की अभिरुचि, आकर्षण तथा उत्साह को व्यक्त करती है। जब किसी विद्यार्थी में किसी विषय के प्रति रुचि होती है, तो वह उस विषय को समझने, उसके बारे में अधिक जानने तथा उसमें उत्कृष्टता प्राप्त करने का प्रयास करता है। रुचि सीखने की प्रक्रिया को आनंददायक एवं प्रभावी बनाती है। जिन विद्यार्थियों में अध्ययन के प्रति रुचि होती है, वे कक्षा में अधिक सक्रिय रहते हैं, नियमित रूप से अध्ययन करते हैं तथा बेहतर शैक्षणिक उपलब्धियाँ प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत, जिन विद्यार्थियों में अध्ययन के प्रति रुचि का

* एम.ए., पी–एच.डी., मनोविज्ञान विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
ई–मेल – krishnajyoti310@gmail.com

अभाव होता है, वे अध्ययन को केवल औपचारिकता के रूप में लेते हैं, जिससे उनकी उपलब्धि प्रभावित होती है।

मनोवैज्ञानिकों का मत है कि रुचि अधिगम का एक महत्वपूर्ण प्रेरक तत्व है। रुचि के कारण विद्यार्थी स्वेच्छा से अध्ययन में संलग्न होते हैं तथा कठिन विषयों को भी समझने का प्रयास करते हैं। रुचि न केवल अध्ययन की गुणवत्ता को बढ़ाती है, बल्कि स्मरण शक्ति, एकाग्रता तथा रचनात्मक चिंतन को भी विकसित करती है। यही कारण है कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली में रुचि–आधारित अधिगम (Interest & Based Learning) को विशेष महत्व दिया जा रहा है। नई शिक्षा नीति 2020 भी विद्यार्थियों की रुचि, क्षमता एवं आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा प्रदान करने पर बल देती है।

शैक्षिक रुचि के साथ–साथ अध्ययन आदतें भी शैक्षणिक सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अध्ययन आदतों से आशय उन नियमित व्यवहारों, प्रक्रियाओं एवं तकनीकों से है जिन्हें विद्यार्थी अध्ययन करते समय अपनाते हैं। इनमें समय प्रबंधन, अध्ययन की योजना बनाना, नोट्स तैयार करना, पुनरावृत्ति करना, अध्ययन सामग्री का संगठन, परीक्षा की तैयारी तथा आत्म–अनुशासन जैसी गतिविधियाँ सम्मिलित होती हैं। अच्छी अध्ययन आदतें विद्यार्थियों को अपने समय एवं संसाधनों का प्रभावी उपयोग करने में सहायता प्रदान करती हैं, जबकि कमजोर अध्ययन आदतें उनकी शैक्षणिक प्रगति में बाधा उत्पन्न कर सकती हैं।

उच्च शिक्षा के स्तर पर अध्ययन आदतों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है क्योंकि कॉलेज के विद्यार्थियों को विद्यालय की तुलना में अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है। उन्हें अपने अध्ययन की योजना स्वयं बनानी होती है तथा समय का प्रबंधन भी स्वयं करना होता है। ऐसी स्थिति में जिन विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें व्यवस्थित एवं सकारात्मक होती हैं, वे बेहतर शैक्षणिक प्रदर्शन करते हैं। दूसरी ओर, अव्यवस्थित अध्ययन, समय की बर्बादी तथा परीक्षा के समय केवल रटने की प्रवृत्ति शैक्षणिक उपलब्धि को प्रभावित करती है।

वर्तमान समय में तकनीकी विकास एवं डिजिटल संसाधनों के विस्तार ने अध्ययन की प्रकृति को भी बदल दिया है। इंटरनेट, ऑनलाइन कक्षाएँ, ई–पुस्तकें तथा डिजिटल शिक्षण मंचों ने अध्ययन को अधिक सुलभ एवं सुविधाजनक बनाया है। इसके साथ ही सोशल मीडिया, ऑनलाइन मनोरंजन तथा डिजिटल विचलनों ने विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों पर नकारात्मक प्रभाव भी डाला है। अनेक विद्यार्थी अध्ययन के समय सोशल मीडिया, मोबाइल गेम्स एवं अन्य डिजिटल गतिविधियों में अधिक समय व्यतीत करते हैं, जिससे उनकी एकाग्रता एवं अध्ययन की गुणवत्ता प्रभावित होती है। इसलिए आज के संदर्भ में प्रभावी अध्ययन आदतों का विकास और भी अधिक आवश्यक हो गया है।

कॉलेज स्तर के विद्यार्थियों में शैक्षिक रुचि एवं अध्ययन आदतों का विकास केवल उनकी व्यक्तिगत सफलता के लिए ही नहीं, बल्कि समाज एवं राष्ट्र के विकास के लिए भी आवश्यक है। यदि विद्यार्थी अध्ययन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करते हैं तथा प्रभावी अध्ययन आदतों को अपनाते हैं, तो वे न केवल बेहतर शैक्षणिक उपलब्धियाँ प्राप्त करते हैं, बल्कि अपने व्यावसायिक एवं सामाजिक जीवन में भी अधिक सफल होते हैं। इसलिए शिक्षकों, अभिभावकों तथा शिक्षा प्रशासकों का यह दायित्व है कि वे विद्यार्थियों में अध्ययन के प्रति रुचि उत्पन्न करें तथा सकारात्मक अध्ययन आदतों के विकास हेतु अनुकूल वातावरण प्रदान करें।

विभिन्न शोध अध्ययनों ने भी यह सिद्ध किया है कि शैक्षिक रुचि एवं अध्ययन आदतों का शैक्षणिक उपलब्धि से घनिष्ठ संबंध होता है। जिन विद्यार्थियों में अध्ययन के प्रति उच्च रुचि एवं सुव्यवस्थित अध्ययन आदतें होती हैं, वे परीक्षा में बेहतर प्रदर्शन करते हैं तथा उच्च शैक्षणिक उपलब्धि प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत, अध्ययन के प्रति उदासीनता एवं कमजोर अध्ययन आदतें निम्न शैक्षणिक उपलब्धि का कारण बनती हैं। अतः यह आवश्यक है कि इन दोनों कारकों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाए तथा यह ज्ञात किया जाए कि ये कॉलेज छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि को किस सीमा तक प्रभावित करते हैं।

उपरोक्त तथ्यों के आलोक में प्रस्तुत अध्ययन "कॉलेज के छात्रों की शैक्षिक रुचि एवं अध्ययन आदतों का शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभावः एक अध्ययन" अत्यंत महत्वपूर्ण एवं समसामयिक है। यह अध्ययन न केवल छात्रों की शैक्षणिक सफलता को प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान करने में सहायक होगा, बल्कि शिक्षकों, अभिभावकों एवं नीति–निर्माताओं को भी उपयोगी सुझाव प्रदान करेगा। इसके माध्यम से यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि शैक्षिक रुचि एवं अध्ययन आदतें किस प्रकार छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि को

प्रभावित करती हैं तथा इन कारकों के विकास द्वारा शैक्षणिक गुणवत्ता में किस प्रकार सुधार किया जा सकता है।

उद्देश्य

1. कॉलेज के छात्रों की शैक्षिक रुचि का अध्ययन करना।
2. शैक्षिक रुचि एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य संबंध ज्ञात करना।
3. अध्ययन आदतों एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य संबंध ज्ञात करना।
4. शैक्षिक रुचि एवं अध्ययन आदतों के संयुक्त प्रभाव का शैक्षणिक उपलब्धि पर अध्ययन करना।

साहित्य की समीक्षा

शिक्षा मनोविज्ञान एवं अधिगम संबंधी शोधों में शैक्षिक रुचि एवं अध्ययन आदतों को महत्वपूर्ण कारक माना गया है। विभिन्न शोधकर्ताओं ने इनके प्रभाव का अध्ययन किया है।

ब्तवू और ब्तवू (1965) के अनुसार रुचि वह मानसिक अवस्था है जो व्यक्ति को किसी गतिविधि में सक्रिय भागीदारी हेतु प्रेरित करती है। उनके अनुसार रुचि अधिगम की प्रभावशीलता को बढ़ाती है तथा विद्यार्थियों को बेहतर प्रदर्शन हेतु प्रेरित करती है।

ळववक (1973) ने अध्ययन आदतों को अधिगम की सफलता का प्रमुख निर्धारक माना है। उन्होंने बताया कि नियमित अध्ययन, समय प्रबंधन तथा पुनरावृत्ति की आदतें छात्रों की उपलब्धि को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती हैं।

Entwistle और Ramsden (1983) ने अपने अध्ययन में पाया कि जिन छात्रों की अध्ययन रणनीतियाँ व्यवस्थित थीं, उनकी शैक्षणिक उपलब्धि अपेक्षाकृत अधिक थी। उन्होंने अध्ययन आदतों और शैक्षणिक सफलता के मध्य महत्वपूर्ण संबंध स्थापित किया।

Zimmerman (2002) ने स्व–नियंत्रित अधिगम (Self & Regulated Learning) की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए बताया कि जो विद्यार्थी अपने अध्ययन की योजना बनाते हैं, लक्ष्य निर्धारित करते हैं तथा स्वयं का मूल्यांकन करते हैं, वे अधिक सफल होते हैं।

Crede और Kuncel (2008) ने विभिन्न शोधों का मेटा–विश्लेषण करते हुए निष्कर्ष निकाला कि अध्ययन आदतें एवं अध्ययन कौशल शैक्षणिक उपलब्धि के महत्वपूर्ण भविष्यवक्ता हैं। उन्होंने पाया कि अध्ययन आदतों का प्रभाव केवल बुद्धिलब्धि से ही नहीं बल्कि कई बार उससे अधिक महत्वपूर्ण हो सकता है।

भारत में भी अनेक शोधकर्ताओं ने इस विषय पर अध्ययन किया है। शर्मा (2015) ने पाया कि शैक्षिक रुचि एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सकारात्मक सहसंबंध पाया जाता है। जिन छात्रों की रुचि अधिक थी, उनके परीक्षा परिणाम भी बेहतर थे।

कुमार और सिंह (2018) ने कॉलेज छात्रों की अध्ययन आदतों का अध्ययन करते हुए पाया कि समय प्रबंधन, नियमित उपस्थिति तथा अध्ययन की निरंतरता शैक्षणिक उपलब्धि को प्रभावित करती है।

यादव (2020) ने अपने अध्ययन में पाया कि डिजिटल संसाधनों का प्रभावी उपयोग तथा स्व–अध्ययन की आदतें छात्रों की उपलब्धि को बढ़ाने में सहायक होती हैं।

उपरोक्त साहित्य से स्पष्ट होता है कि शैक्षिक रुचि एवं अध्ययन आदतें शैक्षणिक उपलब्धि के महत्वपूर्ण निर्धारक हैं तथा इनके मध्य सकारात्मक संबंध पाया जाता है।

कार्यप्रणाली

शोध की प्रकृति प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं सहसंबंधात्मक (Descriptive and Correlational) शोध पद्धति पर आधारित है। इस अध्ययन में कॉलेज छात्रों की शैक्षिक रुचि एवं अध्ययन आदतों का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव ज्ञात करने का प्रयास किया गया है।

न्यादर्श

अध्ययन हेतु 100 कॉलेज छात्रों का चयन दैव (Random Sampling) विधि द्वारा किया गया। चयनित छात्र विभिन्न स्नातक पाठ्यक्रमों से संबंधित थे। इनमें छात्र एवं छात्राएँ दोनों सम्मिलित थे।

शोध उपकरण अध्ययन के लिए निम्नलिखित उपकरणों का प्रयोग किया गया–

1. ''शैक्षिक रुचि मापनी (Educational Interest Scale)''
2. ''अध्ययन आदत सूची (Study Habits Inventory)''
3. ''शैक्षणिक उपलब्धि अभिलेख (Academic Achievement Record)''

शैक्षणिक उपलब्धि के मापन हेतु छात्रों के पिछले सेमेस्टर के प्राप्तांकों का उपयोग किया गया।

आंकड़ा संकलन शोधकर्ता द्वारा चयनित छात्रों से व्यक्तिगत संपर्क स्थापित कर प्रश्नावली भरवाई गई। प्राप्त आंकड़ों को वर्गीकृत कर सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया।

सांख्यिकीय तकनीक –

माध्य (Mean)
प्रतिशत (Percentage)
मानक विचलन (Standard Deviation)
सहसंबंध गुणांक (Correlation Coefficient) का उपयोग किया गया।

सारणी एवं आंकड़ों का प्रस्तुतीकरण

सारणी 1 : छात्रों की शैक्षिक रुचि का स्तर

शैक्षिक रुचि स्तर	छात्रों की संख्या	प्रतिशत
उच्च	42	42
मध्यम	38	38
निम्न	20	20
कुल	**100**	**100**

व्याख्याः सारणी से स्पष्ट है कि 42% छात्रों में उच्च शैक्षिक रुचि, 38% में मध्यम तथा 20% में निम्न स्तर की शैक्षिक रुचि पाई गई।

सारणी 2 : अध्ययन आदतों का स्तर

अध्ययन आदत स्तर	छात्रों की संख्या	प्रतिशत
अच्छी	46	46
सामान्य	34	34
कमजोर	20	20
कुल	**100**	**100**

व्याख्याः अध्ययन से ज्ञात हुआ कि 46% छात्रों की अध्ययन आदतें अच्छी, 34% की सामान्य तथा 20% की कमजोर थीं।

सारणी 3 : शैक्षिक रुचि एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सहसंबंध

चर	सहसंबंध गुणांक (r)
शैक्षिक रुचि एवं शैक्षणिक उपलब्धि	0.68

व्याख्याः सहसंबंध गुणांक 0.68 दर्शाता है कि शैक्षिक रुचि एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य उच्च धनात्मक संबंध पाया गया।

सारणी 4 : अध्ययन आदतों एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सहसंबंध

चर	सहसंबंध गुणांक (r)
अध्ययन आदतें एवं शैक्षणिक उपलब्धि	0.72

व्याख्याः अध्ययन आदतों एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य 0.72 का उच्च धनात्मक सहसंबंध प्राप्त हुआ।

परिणाम

अध्ययन से प्राप्त प्रमुख परिणाम निम्नलिखित हैं–

1. अधिकांश छात्रों में शैक्षिक रुचि का स्तर मध्यम से उच्च पाया गया।
2. लगभग आधे छात्रों की अध्ययन आदतें अच्छी थीं।
3. शैक्षिक रुचि एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सकारात्मक एवं महत्वपूर्ण संबंध पाया गया।
4. अध्ययन आदतों एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य भी उच्च धनात्मक संबंध प्राप्त हुआ।
5. जिन छात्रों में उच्च शैक्षिक रुचि एवं अच्छी अध्ययन आदतें थीं, उनकी शैक्षणिक उपलब्धि अन्य छात्रों की तुलना में अधिक थी।
6. अध्ययन आदतों का प्रभाव शैक्षिक उपलब्धि पर अपेक्षाकृत अधिक पाया गया।
7. छात्रों की सफलता में आत्म–अनुशासन, समय प्रबंधन तथा नियमित अध्ययन की महत्वपूर्ण भूमिका पाई गई।

विवेचना

प्रस्तुत अध्ययन के परिणाम पूर्ववर्ती शोधों से मेल खाते हैं। अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि शैक्षिक रुचि छात्रों की सीखने की प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बनाती है। रुचि के कारण छात्र अध्ययन में अधिक समय एवं प्रयास लगाते हैं, जिससे उनकी उपलब्धि बेहतर होती है। अध्ययन आदतों का प्रभाव और भी अधिक महत्वपूर्ण पाया गया। जिन छात्रों में नियमित अध्ययन, पुनरावृत्ति, समय प्रबंधन एवं अध्ययन सामग्री के संगठन जैसी आदतें थीं, उन्होंने शैक्षणिक उपलब्धि में बेहतर प्रदर्शन किया। यह निष्कर्ष ब्तमकम एवं ज्ञनदबमस (2008) के अध्ययन का समर्थन करता है।

शोध में यह भी पाया गया कि शैक्षिक रुचि एवं अध्ययन आदतें एक–दूसरे को प्रभावित करती हैं। जब छात्र किसी विषय में रुचि लेते हैं, तो वे अधिक नियमित रूप से अध्ययन करते हैं। इसी प्रकार अच्छी अध्ययन आदतें विषय के प्रति आत्मविश्वास बढ़ाती हैं, जिससे रुचि का विकास होता है। वर्तमान समय में डिजिटल तकनीकों के बढ़ते उपयोग ने अध्ययन आदतों को प्रभावित किया है। ऑनलाइन संसाधनों की उपलब्धता ने अध्ययन को अधिक सुविधाजनक बनाया है, किन्तु सोशल मीडिया एवं डिजिटल विचलन कई बार अध्ययन में बाधा भी उत्पन्न करते हैं। इसलिए छात्रों को तकनीक का संतुलित उपयोग करना चाहिए। कॉलेज स्तर पर छात्रों की शैक्षणिक सफलता केवल बुद्धिलब्धि पर निर्भर नहीं करती, बल्कि उनकी रुचि, प्रेरणा एवं अध्ययन व्यवहार पर भी निर्भर करती है। इसलिए शिक्षकों एवं अभिभावकों को छात्रों में सकारात्मक अध्ययन आदतों के विकास हेतु प्रयास करना चाहिए।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि शैक्षिक रुचि एवं अध्ययन आदतें शैक्षणिक उपलब्धि के महत्वपूर्ण निर्धारक हैं। जिन छात्रों में उच्च शैक्षिक रुचि एवं सकारात्मक अध्ययन आदतें होती हैं, वे अधिक सफल होते हैं। अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि अध्ययन आदतों का प्रभाव शैक्षणिक उपलब्धि पर अत्यंत महत्वपूर्ण है। नियमित अध्ययन, समय प्रबंधन, आत्म–अनुशासन एवं पुनरावृत्ति जैसी आदतें छात्रों की सफलता को बढ़ाती हैं। शैक्षिक संस्थानों को चाहिए कि वे छात्रों में रुचि–आधारित अधिगम को बढ़ावा दें तथा प्रभावी अध्ययन कौशल विकसित करने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करें। इससे छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में वृद्धि होगी तथा उनकी समग्र शैक्षिक गुणवत्ता में सुधार होगा।

संदर्भ सूची

Crede, M., & Kuncel, N. R. (2008). Study habits, skills, and attitudes: The third pillar supporting collegiate academic performance. *Perspectives on Psychological Science*, 3(6), 425–453. https://doi.org/10.1111/j.1745-6924.2008.00089.

Crow, L. D., & Crow, A. (1965). *Educational psychology*. American Book Company.

Entwistle, N., & Ramsden, P. (1983). *Understanding student learning*. Croom Helm.

Good, C. V. (1973). *Dictionary of education* (3rd ed.).

McGraw-Hill. Kumar, R., & Singh, P. (2018). Study habits and academic achievement among college students. *International Journal of Educational Research*, 6(2), 45–53.

Sharma, S. (2015). Educational interest and academic achievement of college students. *Indian Journal of Educational Studies*, 4(1), 22–30.

Yadav, R. (2020). Impact of study habits on academic achievement among undergraduate students. *Journal of Educational Psychology*, 8(2), 67–75.

Zimmerman, B. J. (2002). Becoming a self-regulated learner: An overview. *Theory Into Practice*, 41(2), 64–70. https://doi.org/10.1207/s15430421tip4102_

बाणभट्ट की आत्मकथाः एक समीक्षा

डॉ. अनीता रानी*

'बाणभट्ट की आत्मकथा' हजारी प्रसाद द्विवेदी का प्रसिद्ध उपन्यास है । यह उपन्यास मानवीय मूल्यों, प्रेम, त्याग और संघर्ष को चित्रित करता है । बाण भट्ट एक संस्कृत कवि और गद्य कार थे । वे सातवीं शताब्दी के दौरान हुए थे । वे सम्राट हर्षवर्धन के दरबारी कवि थे । 'बाणभट्ट की आत्मकथा' **का महत्व आज भी** इस बात में है कि यहाँ **त**क, वेद, गुरू, राजा, सामंत, श्रमण और ब्राह्मण की अपेक्षा मनुष्य मात्र की प्रतिष्ठा पर बल दिया गया है। **मानवता** की अवधारणा के पीछे तर्क यह है कि इसमें समता और न्याय की भावना निहित होती है। किसी धर्म, सम्प्रदाय, देश, जाति में उत्पन्न होने के बावजूद यह **मानवता** ही ऐसा तत्व है जो सभी को बराबरी के स्तर पर सींच लाता है। इस उपन्यास में इसी मानवीय प्रेम की अवधारणा को स्थापित करने का प्रयत्न **दृष्टिगोचर होता** है। निपुणिका दलित है और नारी भी है लेकिन लेखक उसके चारित्रिक विकास को इतने संय**म** और उदारता के साथ चित्रित करता है कि वह सहज ही पा**ट**कीय **संवेदना** और आदर की अधिकारिणी बन जाती है। नारी शक्ति का अनादर और उपेक्षा करने वाले भूल जाते हैं कि रत्री जाति में धैर्य, सं**य**म, सहनशीलता के बावजूद विद्रोह करने की क्षमता भी होती है। यही क्षमता बड़े से बड़े साम्राज्य को धूल **चटा** देती है।

'महि**ला** मयी शक्ति की उपेक्षा करने वाले साम्राज्य नष्ट हो गए हैं, मठ ध्वस्त हो गए हैं, शान और वैराग्य के जंजाल **बुदबुद** की भाँति क्षणभर में विलुप्त हो गए हैं। क्योंकि राजाओं के अंतःपुर भोग विलास के केंद्र बन गए हैं। देश और जनता की चिंता राजाओं का विषय नहीं रह गए है। नारी को बलपूर्वक शारीरिक तुष्टि और श्रेष्ठता और प्रदर्शन का माध्यम बनाया जा रहा है। धर्म के ठेकेदार मठाधीश आध्यात्मिक चिंतन से विरत होकर सुख और आनंद की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो गए हैं। **संसर्ग** उनके लिए वर्जित नहीं रह गया है। मनुष्य के कल्याण की भावना उनके मन से जाती रही है। ऐसी स्थिति में विद्रोह चेतना का प्रादुर्भाव अवश्यंभावी है। जब समान में व्यवस्था नाम की कोई चीज नहीं रह जाती है तब एक नयी समतामूलक कल्याणकारी व्यवस्था के लिए संकल्प व्यक्त किया जाता है, जिसमें नारी की प्रमुख भूमिका होती है। इस उपन्यास में महामाया, निपुणिका और सुचरिता का विद्रोह एक और तत्कालीन समाज व्यवस्था की जड़ता, अमानवीयता एवं शोषण के विरुद्ध है तो दूसरी ओर नवीन समाजव्यवस्था के निर्माण में स्त्री की भूमिका का संकेत भी। स्त्री **प्र**कृति **म**नुष्यता के केंद्र में है इसलिए इसकी अस्मिता की उपेक्षा करना खतरे से खाली नहीं है। ' बाणभट्ट की आत्मकथा' में नारी के प्रति आदर का जो भाव प्रकट हुआ है उसके मूल में मानवकल्याण की कामना निहित है।

बाण भट्ट की **आत्मकथा'** उपन्यास समकालीन पूँजीवादी व्यवस्था की विकृतियों के चित्रण पीछे नहीं रहता। जहाँ सामंती समाज में नारी का भोग्या रूप स्वीकृत था वहाँ पूँजीवादी आधुनिक समाज में नारी के प्रति पुरुषवादी मानसिकता में कोई सकारात्मक अंतर नहीं आया है। यह कहना असंगत नहीं होगा कि पूँजीवाद भोगवाद का ही एक परिवर्तित रूप है, इसलिए यहाँ भी नारी के प्रति दृष्टिकोण लगभग वैसा ही है, जैसा **सामंती समाज** में था। **हां**, यह जरूर है कि यह सामाजिक अवगुंठन से कुछ हद तक मुक्त हुई है लेकिन इस मुक्ति की सार्थकता तब तक सिद्ध नहीं हो सकती जब उसके प्रति, और स्पष्ट शब्दों में कहना चाहें तो उसकी देह के प्रति पुरुष समाज की दृष्टि में सकारात्मक बदलाव नहीं आ जाता। भेद भाव पर आधारित इस समाजव्यवस्था के सत्य को महामाया बहुत स्पष्ट शब्दों में कह देती हैं पुरुष का सत्य **ओ**र है, नारी का सत्य **ओ**र है।' सत्य की यह **अलग - अलग** परिभाषाएँ अथवा मानदण्ड सामाजिक विषमता, शोषण और भ्रष्टाचार को वैचारिक आधार

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सनातन धर्म महिला महाविद्यालय नरवाना (जींद)

प्रदान करते हैं। यह उपन्यास इस कुत्सित वैचारिकता को अस्वीकार करता है और समतावादी मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है। नारी जाति के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए, उसे मानवीय रूप प्रदान करते हुए और उसकी निजता की रक्षा का प्रबल समर्थन करते हुए यह उपन्यास मानवीय बौध के जिस बिंदु का स्पर्श करता है वह निश्चय ही एक प्रगतिशील चिंतन का परिणाम है।

इसे राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन और भारतीय अस्मिता की सुरक्षा संबंधी प्रयत्न के रूप में भी देखा जा सकता है। प्रत्यंत दस्युओं का आप्तन्न आक्रमण एक राष्ट्रीय संकट है। देवपुत्र तुवरमिलिन्द राष्ट्रीय आकांक्षा के प्रतीक हैं। लेकिन इस आकांक्षा की प्राप्ति तब तक संभव नहीं है जब तक सामान्य जनों की हिस्सेदारी इस आंदोलन में सुनिश्चित नहीं हो जाती। जनता यही शक्ति है, जिसे संगठित करना न सिर्फ एक चुनौती है बल्कि महत् उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक भी। इस उपन्यास में इसीलिए महामाया जनता को अमृत पुत्र के रूप में संबोधित करते हुए उसे दानवी शक्ति के विरुद्ध **खड़ा** होने का आह्वान करती हैं। एक तरह से यह उपन्यास सामंतवाद बनाम जनसामान्य के संघर्ष का कलात्मक इतिहास कहा जा सकता **हैं**।

"बाण भट्ट की आत्मकथा" में मानवता का चित्रण एक इस तरह के उपन्यास के माध्यम से किया गया है जो बाणभट्ट के जीवन, समाज और प्रेम के प्रति उनकी गहरी भावनाओं को उजागर करता है। उपन्यास में मानवीय संवेदनाओं, रिश्तों, और सांस्कृतिक मूल्यों को दिखाया गया है, जो इसे केवल एक ऐतिहासिक उपन्यास नहीं, बल्कि एक ऐसी रचना बनाता है जो मानवता के विभिन्न पहलुओं को स्पर्श करती है।

मानवता के कई विभिन्न पहलू जो "बाण भट्ट की आत्मकथा" में दर्शाए गए हैं :-

प्रेम और संबंध :-

बाणभट्ट का प्रेम, उनकी पत्नी भट्टिनी के साथ, और निपुणिका के साथ उनका रिश्ता, प्रेम के विभिन्न रूपों को दर्शाते हैं। यह उपन्यास प्रेम की सुंदरता, दुख और त्याग को अंकित करता है।

सामाजिक जीवन :-

उपन्यास भारत के सातवीं शताब्दी के सामाजिक जीवन का एक मनोरंजक चित्रण प्रस्तुत करता है, जिसमें राजा, रानियाँ, ब्राह्मण, और साधारण लोग शामिल हैं। यह उपन्यास समाज के विभिन्न वर्गों के बीच संबंधों, संघर्षों और सामंजस्य को भी उजागर करता है।

मानवीय संवेदनाएं :-

बाणभट्ट की आत्मकथा में, लेखक ने मानवीय संवेदनाओं जैसे खुशी, दुख, आशा, निराशा, प्रेम, और घृणा को गहराई से दर्शाया है।

सांस्कृतिक मूल्य : -

यह उपन्यास भारत की सांस्कृतिक विरासत और मूल्यों को भी उजागर करता है, जैसे कि परिवार की जिम्मेदारी, ज्ञान की खोज, और धर्म के प्रति श्रद्धा।

न्याय और अन्याय :-

बाणभट्ट की आत्मकथा में, अन्याय के खिलाफ आवाज उठाई गई है और न्याय की भावना को उजागर किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास सामंती आचार - विचार की कुरूपता, बीभत्सा का प्रहार है । इसमें भैरवियों और महामाया की वाणी, सामंत विरोधी, जनतांत्रिक मानवतावादी विचारधारा के रूप में उजगार हुई हैं ।

जब हम बाणभट्ट की आत्मकथा में अभिव्यक्त मानव प्रेम के स्वरूप के निर्धारक तत्वों या स्रोतों पर विचार करते हैं तो दो प्रमुख पहलु या स्रोत दिखाई देते हैं, जिनकी चर्चा आवश्यक है। एक स्रोत द्विवेदीजी के समय में स्त्री-मुक्ति के तहत स्त्री के प्रति बदले दृष्टिकोण में निहित है, तो दूसरा हेर-फेर के साथ भागवत की प्रेमाभक्ति की परम्परा के अनुगमन में। दूसरी परम्परा की खोज में नामवर सिंह कहते हैं कि - "द्विवेदीजी के लिए 'प्रेम सबसे बड़ा पुरुषार्थ है- 'प्रेमा पुमर्थो महान।"[1] उनके अनुसार द्विवेदीजी को प्रेम की अवधारणा का ज्ञान

भागवत की कृष्ण प्रेमाभक्ति की परम्परा से प्राप्त हुआ था। उन्होंने 'बाणभट्ट कीआत्मकथा' की प्रेम-संवेदना को भागवत की प्रेमाभक्ति-संवेदना की परम्परा का विकास सिद्ध किया है। वे लिखते हैं- "प्रेमाभक्ति की चर्चा में बाणभट्ट की आत्मकथा की सहायता लेने पर शायद आपत्ति की जा सकती है। इसलिए स्पष्टीकरण के लिए भट्टिनी की इस घोषणा का उल्लेख आवश्यक है कि ' मुझे भागवत धर्म में यह पूर्णता दिखाई देती है।' इसके अतिरिक्त यह अकारण नहीं है कि इस कथाकृति के सभी प्रमुख चरित्र-निपुणिका, भट्टिनी, सुचरिता यहाँ तक कि स्वयं बाणभट्ट भी या महावराह के उपासक हैं या नारायण के।... इस प्रकार 'आत्मकथा' की पूरी परिकल्पना ही कृष्णभक्ति की एक निगूढ़ भावना में विन्यस्त की गई है।"[2]

द्विवेदीजी के समय के थोड़ा आगे और पीछे स्त्री-मुक्ति के मानवीय प्रश्न और स्त्री के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन दिखाई देता है। जिसका साक्ष्य द्विवेदीयुगीन और छायावादी साहित्य में मिलता है। छायावादी कवि की तरह बाणभट्ट की आत्मकथा भी प्रेम के अशरीरी और वायवीय रूप का वर्णन करता है। नामवर सिंह छायावादी प्रेम-संवेदना के बारे में लिखते हैं - "छायावाद की अधिकांश कविताओं में सौन्दर्य अशरीरी और हवाई है, तथा भावना भी कल्पनावासी तथा अतृप्ति-परक है।"[2]

स्त्रियों के प्रति सुधारवादी रवैया भी छायावाद की विशेषता है। इसके लिए उसे मानवीय से अधिक 'देवी' देखा गया, ताकि धर्मप्राण जनता में उसके महत्व को स्थापित किया जा सके और उसे पवित्र माना जा सके। जयशंकर प्रसाद की कामायनी नारी को श्रद्धा का पात्र बताती है -

" नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के
सुन्दर समतल में।"[3]

इसी तरह विधवा औरत को निराला ने अपनी कविता 'विधवा' में 'इष्ट देव के मन्दिर की पूजा-सी' कहा है।

नामवर सिंह का यह कहना ठीक है कि बाणभट्ट की आत्मकथा की मानवीय प्रेम-संवेदना पर भागवत की प्रेमाभक्ति का प्रभाव है, लेकिन द्विवेदीजी उपन्यास के प्रेम के स्वरूप में जिस 'अदृप्तता' और 'स्त्री-जनोचित लज्जा' का उल्लेख करते हैं, वह भागवत परम्परा में नहीं पाई जाती है। अकेले सूरदास के ही प्रेम-वर्णन को लें, तो स्पष्ट होगा कि 'आत्मकथा' के पात्रों के विपरीत राधा और कृष्ण के प्रेम में स्वछन्दता और उन्मुक्तता है, लज्जा, संयम या अदृप्तता नहीं। स्पष्टतः द्विवेदीजी ने प्रेमाभक्ति की जो अवधारणा अपने उपन्यास के लिए अपनाई उस पर उनके ज़माने ने गुणात्मक प्रभाव डाला।

ध्यातव्य कि बाणभट्ट की मानवीय प्रेम-संवेदना पर भागवत की प्रेमाभक्ति के साथ-साथ छायावादी और, द्विवेदीजी के अपने समय, का प्रभाव दिखाई देता है। छायावादी शुष्क 'श्रद्धा' को द्विवेदीजी ने भागवत की प्रेमाभक्ति के सहारे 'भक्ति' बना दिया है। 'श्रद्धा' और 'भक्ति' में क्या अन्तर है? इसे रामचन्द्र शुक्ल ने यों समझाया है- "श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।"[4] 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का प्रेम यदि भक्ति की शब्दावली से आच्छादित है, तो उसमें स्त्री के प्रति मानवीय संवेदना व्यक्त की गई है ।

निष्कर्ष के रूप में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के एक विशिष्ट रूप को रूपायित करता है। इस सम्बन्ध को विशिष्ट बनाती है विशिष्ट प्रेम-संवेदना। इस संवेदना का आधार यह विश्वास है कि पुरुष द्वारा स्त्री के प्रति दायित्व का निर्वाह उसे प्रेम करने का श्रेष्ठ प्रकार है। यहाँ मानवीय प्रेम संवेदना का प्रकटीकरण दायित्व निर्वाह के रूप में हुआ है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' के नायक बाणभट्ट की प्रेम-संवेदना उपन्यास की केन्द्रीय प्रेम-संवेदना है। निउनिया के लिए प्रेम का अर्थ दूसरा है। वह बाण से बताती भी है कि एक स्त्री पुरुष से क्या चाहती है, फिर भी वह बाण के ही दर्शन को आगे बढ़ाती है। भट्टिनी तो शुरू से ही अपने पक्ष को व्यक्त करने के बजाय बाण के ही रास्ते पर चलती है।

कुल मिलाकर, "बाणभट्ट की आत्मकथा" एक ऐसी रचना है जो मानवता के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती है और पाठकों को मानवीय संवेदनाओं और मूल्यों के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करती है। यह उपन्यास एक ऐसा दर्पण है जो हमें मानव जीवन की सुंदरता और जटिलता को देखने में मदद करता है।

संदर्भ - सूची :-

1. **'दूसरी परम्परा की खोज' नामवर सिंह, पृष्ठ संख्या 12. राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली**
2. छायावाद, नामवार सिंह, पृष्ठ संख्या 69, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. बाणभट्ट की आत्मकथा पाठ और पुनर्पाठ .संपादक .मधुरेश . पृष्ठ संख्या 61, आधार प्रकाशन, हरियाणा

स्मृति ग्रंथों में विधि, न्याय एवं राजधर्म का अंतर्संबंध : एक आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ. अस्मिता कुमारी*

सार :

प्रस्तुत अध्ययन ''स्मृति ग्रंथों में विधि, न्याय एवं राजधर्म का अंतर्संबंध : एक आलोचनात्मक अध्ययन'' का अध्ययन है। भारतीय प्राचीन राजनीतिक एवं विधिक चिंतन में स्मृति ग्रंथों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इन ग्रंथों में केवल धार्मिक एवं सामाजिक आचार–विचार का ही वर्णन नहीं मिलता, बल्कि विधि, न्याय तथा राजधर्म के बीच गहन अंतर्संबंध की भी विस्तृत व्याख्या की गई है। स्मृतिकारों ने राजा को विधि का निर्माता नहीं बल्कि विधि का संरक्षक माना है। न्याय व्यवस्था का आधार धर्म तथा सामाजिक मर्यादा को स्वीकार किया गया है तथा राजधर्म का प्रमुख उद्देश्य प्रजा की सुरक्षा, न्याय की स्थापना एवं सामाजिक संतुलन बनाए रखना बताया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति तथा अन्य प्रमुख स्मृति ग्रंथों के आधार पर विधि, न्याय एवं राजधर्म के पारस्परिक संबंधों का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। साथ ही आधुनिक संवैधानिक मूल्यों, मानवाधिकारों एवं विधि के शासन की अवधारणा के संदर्भ में इन सिद्धांतों की प्रासंगिकता एवं सीमाओं का मूल्यांकन भी किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि स्मृति साहित्य में विधि, न्याय एवं राजधर्म एक–दूसरे के पूरक हैं तथा इनका अंतिम उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था, नैतिकता एवं लोककल्याण की स्थापना है।

मुख्य शब्द : स्मृति ग्रंथ, विधि, न्याय, राजधर्म, धर्मशास्त्र, दण्डनीति, विधि का शासन, सामाजिक नियंत्रण।

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परंपरा में धर्म, विधि, न्याय एवं शासन व्यवस्था का विकास अत्यंत प्राचीन एवं समृद्ध रहा है। वैदिक साहित्य, ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों तथा धर्मसूत्रों के पश्चात स्मृति ग्रंथों ने भारतीय समाज के विधिक, सामाजिक, नैतिक एवं राजनीतिक जीवन को व्यवस्थित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्मृतियाँ केवल धार्मिक आचार–संहिताएँ नहीं हैं, बल्कि वे तत्कालीन समाज की विधिक संरचना, न्यायिक प्रणाली तथा राजकीय दायित्वों का विस्तृत एवं व्यवस्थित प्रतिपादन करती हैं। इन ग्रंथों में व्यक्ति, समाज एवं राज्य के मध्य संतुलन स्थापित करने के लिए विधि, न्याय तथा राजधर्म को परस्पर संबद्ध एवं पूरक अवधारणाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्राचीन भारतीय चिंतन में विधि का आधार केवल राज्य की इच्छा या शासक का आदेश नहीं था, बल्कि उसका मूल स्रोत धर्म, सदाचार, लोकाचार तथा शिष्टाचार को माना गया। स्मृति ग्रंथों में धर्म को सामाजिक व्यवस्था का नियामक तत्व स्वीकार करते हुए यह प्रतिपादित किया गया कि विधि का निर्माण धर्म के अनुरूप होना चाहिए तथा न्याय उसी विधि के निष्पक्ष अनुपालन का माध्यम है। इस प्रकार विधि एवं न्याय का अंतिम उद्देश्य केवल अपराध का दमन नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता, नैतिक अनुशासन एवं लोककल्याण की स्थापना था।

स्मृति ग्रंथों में राजधर्म की अवधारणा को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति तथा बृहस्पति स्मृति में राजा को राज्य का स्वामी नहीं, बल्कि धर्म एवं विधि का संरक्षक माना गया है। राजा का प्रमुख दायित्व प्रजा की रक्षा करना, न्याय की स्थापना करना, दण्ड व्यवस्था को निष्पक्ष रूप से लागू करना तथा सामाजिक संतुलन बनाए रखना बताया गया है। यदि राजा धर्मानुकूल शासन करता है तो राज्य में शांति, समृद्धि एवं नैतिक व्यवस्था स्थापित रहती है, जबकि धर्म से विचलन राज्य एवं समाज दोनों के पतन का कारण बनता है।

स्मृति साहित्य में न्याय की अवधारणा केवल न्यायालयों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह शासन, प्रशासन, सामाजिक संबंधों एवं व्यक्तिगत आचरण के प्रत्येक स्तर पर लागू होती है। न्यायिक प्रक्रिया में साक्ष्य,

* पी–एच.डी., प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
Mob No. : 7667044732, E-mail id : asmitakumari12041993@gmail.com

गवाह, दस्तावेज, शपथ तथा निष्पक्ष निर्णय जैसे तत्वों का उल्लेख यह प्रमाणित करता है कि प्राचीन भारतीय विधि व्यवस्था अत्यंत विकसित एवं व्यवस्थित थी। विशेष रूप से याज्ञवल्क्य स्मृति एवं नारद स्मृति में व्यवहारिक न्याय (व्यवहार) का जो स्वरूप मिलता है, वह आधुनिक न्यायशास्त्र की अनेक अवधारणाओं के समान दिखाई देता है।

स्मृति ग्रंथों में दण्ड व्यवस्था को न्याय का आवश्यक अंग माना गया है। दण्ड का उद्देश्य प्रतिशोध नहीं, बल्कि अपराध की पुनरावृत्ति को रोकना, सामाजिक अनुशासन बनाए रखना तथा धर्म की रक्षा करना था। दण्ड को राज्य की शक्ति का प्रतीक मानते हुए यह स्पष्ट किया गया कि यदि दण्ड व्यवस्था निष्पक्ष एवं धर्मसम्मत होगी, तभी समाज में विधि का सम्मान एवं नागरिकों का विश्वास बना रहेगा। इसलिए विधि, न्याय एवं राजधर्म का संबंध केवल सैद्धांतिक नहीं, बल्कि प्रशासनिक एवं व्यावहारिक भी है।

आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में संविधान सर्वोच्च विधि है तथा शासन का संचालन विधि के शासन, समानता, न्याय एवं मौलिक अधिकारों के सिद्धांतों पर आधारित है। यद्यपि स्मृति साहित्य की सामाजिक संरचना एवं आधुनिक संवैधानिक व्यवस्था में पर्याप्त अंतर है, फिर भी उत्तरदायी शासन, विधि की सर्वोच्चता, न्यायपूर्ण प्रशासन, शासक की जवाबदेही तथा लोककल्याणकारी राज्य जैसी अवधारणाओं में उल्लेखनीय वैचारिक समानता दिखाई देती है। इसी कारण स्मृति ग्रंथों का अध्ययन केवल ऐतिहासिक महत्व तक सीमित नहीं है, बल्कि समकालीन विधिशास्त्र, राजनीतिक दर्शन एवं प्रशासनिक चिंतन के लिए भी उपयोगी सिद्ध होता है।

हालाँकि स्मृति ग्रंथों में वर्णव्यवस्था, जाति–आधारित दण्ड, स्त्री की सीमित विधिक स्थिति तथा सामाजिक असमानताओं से संबंधित अनेक प्रावधान भी मिलते हैं, जो आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों, सामाजिक न्याय एवं मानवाधिकारों के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं हैं। इसलिए इन ग्रंथों का अध्ययन केवल प्रशंसात्मक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि आलोचनात्मक एवं तुलनात्मक दृष्टि से किया जाना आवश्यक है। यह आलोचनात्मक अध्ययन यह समझने में सहायता करता है कि प्राचीन भारतीय विधिक परंपरा में कौन–से सिद्धांत सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक हैं तथा किन सिद्धांतों का पुनर्मूल्यांकन समकालीन संदर्भों में आवश्यक है।

वर्तमान शोध 'स्मृति ग्रंथों में विधि, न्याय एवं राजधर्म का अंतर्संबंध 'एक आलोचनात्मक अध्ययन' इन्हीं प्रश्नों का विश्लेषण करने का प्रयास है। इसमें प्रमुख स्मृति ग्रंथों के आधार पर विधि, न्याय एवं राजधर्म की अवधारणाओं का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाएगा तथा यह परीक्षण किया जाएगा कि इन तीनों तत्वों का पारस्परिक संबंध किस प्रकार भारतीय राज्य व्यवस्था, सामाजिक नियंत्रण एवं लोककल्याणकारी शासन की आधारशिला का निर्माण करता है। साथ ही आधुनिक संवैधानिक मूल्यों, विधि के शासन एवं सामाजिक न्याय की अवधारणाओं के संदर्भ में स्मृति साहित्य की प्रासंगिकता एवं सीमाओं का भी समालोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाएगा।

विधि की अवधारणा : स्मृति ग्रंथों में विधि का अर्थ केवल राज्य द्वारा निर्मित नियमों से नहीं है, बल्कि धर्म, सदाचार, लोकाचार तथा सामाजिक परंपराओं पर आधारित जीवन–पद्धति से है। मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति में विधि को सामाजिक व्यवस्था एवं नैतिक अनुशासन का आधार माना गया है। विधि का उद्देश्य समाज में शांति, समानता तथा उत्तरदायित्व स्थापित करना है।

न्याय का मूल स्वरूप : स्मृति साहित्य में न्याय को धर्म का व्यावहारिक रूप माना गया है। न्याय केवल विवादों का समाधान नहीं, बल्कि सत्य, निष्पक्षता एवं नैतिकता की स्थापना का माध्यम है। न्यायाधीश एवं राजा दोनों से अपेक्षा की गई है कि वे पक्षपात रहित होकर निर्णय दें और धर्म के अनुरूप न्याय करें।

राजधर्म की अवधारणा : राजधर्म का अर्थ राजा के उन कर्तव्यों से है जिनका उद्देश्य प्रजा की रक्षा, न्याय की स्थापना, विधि का पालन तथा लोककल्याण सुनिश्चित करना है। स्मृति ग्रंथों में राजा को धर्म का संरक्षक तथा समाज का सेवक माना गया है, न कि निरंकुश शासक।

विधि एवं राजधर्म का संबंध : स्मृति ग्रंथों के अनुसार राजा स्वयं विधि से ऊपर नहीं होता। उसे धर्म एवं विधि के अनुसार शासन करना होता है। यदि राजा विधि का उल्लंघन करता है तो राज्य में अराजकता एवं अन्याय फैलने लगता है। इसलिए राजधर्म का आधार विधि का संरक्षण है।

न्याय एवं राजधर्म का संबंध : राजा का प्रमुख दायित्व निष्पक्ष न्याय प्रदान करना है। न्याय के बिना राजधर्म अधूरा माना गया है। स्मृति ग्रंथों में कहा गया है कि न्यायप्रिय राजा राज्य को समृद्ध एवं स्थिर बनाता है, जबकि अन्यायी राजा स्वयं अपने राज्य के पतन का कारण बनता है।

विधि एवं न्याय का अंतर्संबंध : विधि न्याय की आधारशिला है तथा न्याय विधि का व्यावहारिक स्वरूप है। स्मृति ग्रंथों में स्पष्ट किया गया है कि न्याय विधि के अनुसार ही होना चाहिए और विधि का उद्देश्य न्याय की स्थापना होना चाहिए। इस प्रकार दोनों अवधारणाएँ एक–दूसरे की पूरक हैं।

दण्ड व्यवस्था का महत्व : स्मृति ग्रंथों में दण्ड को राज्य की आवश्यक शक्ति माना गया है। दण्ड का उद्देश्य प्रतिशोध नहीं बल्कि अपराधों की रोकथाम, सामाजिक अनुशासन एवं धर्म की रक्षा करना है। उचित दण्ड व्यवस्था न्यायपूर्ण शासन की पहचान मानी गई है।

न्यायिक प्रक्रिया : याज्ञवल्क्य स्मृति एवं नारद स्मृति में न्यायिक प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसमें वादी–प्रतिवादी, साक्ष्य, गवाह, दस्तावेज, शपथ तथा निर्णय की प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है। यह प्राचीन भारतीय न्याय प्रणाली की परिपक्वता को दर्शाता है।

सामाजिक नियंत्रण का माध्यम : विधि, न्याय एवं राजधर्म मिलकर सामाजिक नियंत्रण का कार्य करते हैं। इनका उद्देश्य समाज में अनुशासन, नैतिकता, उत्तरदायित्व एवं पारस्परिक विश्वास बनाए रखना है। स्मृति ग्रंथों के अनुसार धर्माधारित शासन सामाजिक स्थिरता का आधार है।

आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता : आज के लोकतांत्रिक एवं संवैधानिक शासन में विधि की सर्वोच्चता, न्यायपालिका की स्वतंत्रता, उत्तरदायी शासन एवं लोककल्याणकारी राज्य जैसे सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। स्मृति ग्रंथों में वर्णित अनेक सिद्धांत इन आधुनिक अवधारणाओं के दार्शनिक आधार के रूप में देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार यह अध्ययन भारतीय राजनीतिक एवं विधिक चिंतन की ऐतिहासिक निरंतरता को समझने के साथ–साथ प्राचीन एवं आधुनिक विधि–दर्शन के मध्य संवाद स्थापित करने का एक महत्वपूर्ण प्रयास है, जो भारतीय बौद्धिक परंपरा के पुनर्पाठ तथा समकालीन विधिक विमर्श को नई दृष्टि प्रदान कर सकता है।

साहित्य समीक्षा

अशोक कुमार सिंह (2025) सिंह ने अपने अध्ययन में धर्मशास्त्रीय परंपरा के अंतर्गत विधि, न्याय एवं शासन की अवधारणाओं का आधुनिक विधिशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण किया है। लेखक के अनुसार स्मृति ग्रंथों में विधि का आधार धर्म है तथा न्याय का उद्देश्य सामाजिक संतुलन एवं लोककल्याण की स्थापना करना है। अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि राजधर्म का पालन विधि एवं न्याय की प्रभावशीलता के लिए अनिवार्य तत्व है।

वेद प्रकाश उपाध्याय (2024) इस अध्ययन में भारतीय धर्मशास्त्र की विधिक परंपरा का ऐतिहासिक एवं दार्शनिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। लेखक का मत है कि स्मृति ग्रंथों में विधि केवल दण्ड व्यवस्था नहीं बल्कि नैतिक अनुशासन एवं सामाजिक उत्तरदायित्व का माध्यम है। उन्होंने आधुनिक "Rule of Law" की अवधारणा एवं स्मृति साहित्य में वर्णित विधि व्यवस्था के मध्य वैचारिक समानताओं की भी चर्चा की है।

संजय कुमार सिंह (2023) लेखक ने प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में राजधर्म की अवधारणा का विस्तृत विवेचन किया है। उनके अनुसार राजा की सर्वोच्च जिम्मेदारी धर्मानुकूल शासन करना, न्याय की स्थापना करना तथा विधि की रक्षा करना है। अध्ययन में यह निष्कर्ष दिया गया है कि राजधर्म, विधि एवं न्याय एक–दूसरे के पूरक सिद्धांत हैं।

महेश चन्द्र शर्मा (2022) महेश चन्द्र शर्मा ने धर्मशास्त्रों में वर्णित न्यायिक प्रणाली, न्यायालयों की संरचना, साक्ष्य प्रणाली एवं दण्ड व्यवस्था का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है। लेखक के अनुसार स्मृति ग्रंथों में न्याय का उद्देश्य अपराध का दमन नहीं बल्कि सामाजिक समरसता एवं धर्म की स्थापना है।

कपिल देव द्विवेदी (2021) इस पुस्तक में मनुस्मृति में वर्णित राजधर्म, विधि एवं शासन व्यवस्था का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। लेखक ने बताया है कि राजा विधि का निर्माता नहीं बल्कि उसका संरक्षक है तथा उसकी वैधता धर्मसम्मत शासन पर निर्भर करती है।

रामशरण शर्मा (2018) रामशरण शर्मा ने प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था के विकास एवं धर्मशास्त्रीय राजनीतिक चिंतन का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट किया है कि विधि, दण्ड एवं न्याय की अवधारणाएँ राज्य की स्थिरता एवं सामाजिक नियंत्रण के प्रमुख साधन थीं। लेखक ने स्मृति साहित्य को भारतीय विधिक इतिहास का महत्वपूर्ण स्रोत माना है।

पाण्डुरंग वामन काणे (2017) धर्मशास्त्रीय साहित्य पर आधारित यह सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। काणे ने स्मृति ग्रंथों में वर्णित विधि, व्यवहार, न्यायिक प्रक्रिया, राजधर्म एवं दण्ड व्यवस्था का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। यह अध्ययन वर्तमान शोध के लिए आधारभूत संदर्भ प्रदान करता है।

के. पी. जायसवाल (2015) लेखक ने प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था में विधि एवं राजसत्ता के संबंध का विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि भारतीय शासन व्यवस्था निरंकुश राजतंत्र पर नहीं बल्कि धर्माधारित विधि एवं न्याय प्रणाली पर आधारित थी। उन्होंने राजधर्म को उत्तरदायी शासन का आधार माना है।

लक्ष्मीदत्त ठाकुर (2013) लेखक ने स्मृति ग्रंथों में वर्णित सामाजिक व्यवस्था एवं न्याय की अवधारणा का विश्लेषण किया है। अध्ययन में यह बताया गया है कि स्मृति साहित्य का मूल उद्देश्य सामाजिक संतुलन बनाए रखना था, यद्यपि इसकी कुछ व्यवस्थाएँ आधुनिक समानता एवं मानवाधिकार के सिद्धांतों से भिन्न हैं।

परमात्मा शरण (2010) परमात्मा शरण ने प्राचीन भारतीय राजनीतिक संस्थाओं, न्याय व्यवस्था तथा राजकीय उत्तरदायित्व का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार स्मृति ग्रंथों में राजधर्म का मूल उद्देश्य प्रजा की सुरक्षा, विधि की रक्षा एवं न्यायपूर्ण शासन की स्थापना था।

उपलब्ध साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अधिकांश विद्वानों ने स्मृति ग्रंथों में विधि, न्याय अथवा राजधर्म का पृथक–पृथक अध्ययन किया है। कुछ शोधों में राजधर्म एवं शासन व्यवस्था पर विशेष बल दिया गया है, जबकि अन्य अध्ययनों में न्यायिक प्रक्रिया एवं दण्ड व्यवस्था का विश्लेषण किया गया है। पाण्डुरंग वामन काणे, रामशरण शर्मा तथा के. पी. जायसवाल जैसे विद्वानों ने धर्मशास्त्रीय परंपरा एवं प्राचीन भारतीय विधि व्यवस्था के ऐतिहासिक स्वरूप को स्पष्ट किया है।

उद्देश्य

1. स्मृति ग्रंथों में विधि की अवधारणा का विश्लेषण करना।
2. न्याय व्यवस्था के मूल सिद्धांतों का अध्ययन करना।
3. राजधर्म एवं विधि के अंतर्संबंध का मूल्यांकन करना।
4. विधि, न्याय एवं राजधर्म के समन्वित स्वरूप का आलोचनात्मक अध्ययन करना।
5. आधुनिक विधि शासन एवं संवैधानिक मूल्यों के संदर्भ में स्मृति साहित्य की प्रासंगिकता का परीक्षण करना।

परिकल्पना

1. स्मृति ग्रंथों में विधि, न्याय एवं राजधर्म एक–दूसरे के पूरक एवं परस्पर निर्भर सिद्धांत हैं।
2. स्मृति साहित्य में वर्णित न्याय व्यवस्था का मूल आधार धर्म एवं सामाजिक नैतिकता है।
3. स्मृति ग्रंथों में राजा को विधि का निर्माता नहीं बल्कि विधि का संरक्षक माना गया है।
4. आधुनिक विधि शासन की अनेक अवधारणाओं का वैचारिक आधार स्मृति साहित्य में निहित है।
5. यद्यपि स्मृति ग्रंथों की कुछ व्यवस्थाएँ वर्तमान लोकतांत्रिक एवं मानवाधिकार मूल्यों से पूर्णतः मेल नहीं खातीं, फिर भी उनमें वर्णित न्याय एवं उत्तरदायी शासन के सिद्धांत आज भी प्रासंगिक हैं।

निष्कर्ष

स्मृति ग्रंथ भारतीय विधिक, सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन की एक सुव्यवस्थित परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन ग्रंथों में विधि, न्याय एवं राजधर्म को पृथक–पृथक अवधारणाओं के रूप में नहीं, बल्कि एक समन्वित शासन व्यवस्था के तीन आधारभूत स्तंभों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। विधि सामाजिक आचरण को नियंत्रित करती है, न्याय उस विधि के निष्पक्ष अनुपालन को सुनिश्चित करता है तथा राजधर्म इन दोनों की रक्षा एवं क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व वहन करता है। इस प्रकार स्मृति साहित्य में राज्य की संपूर्ण व्यवस्था धर्माधारित विधि एवं न्याय पर आधारित दिखाई देती है।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, विष्णु स्मृति तथा अन्य धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में राजा को विधि का सर्वोच्च स्रोत नहीं, बल्कि धर्म एवं विधि का संरक्षक माना गया है। राजा का प्रमुख कर्तव्य प्रजा की रक्षा करना, न्याय की स्थापना करना, अपराधों का निष्पक्ष दमन करना तथा सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखना है। यह अवधारणा आधुनिक 'विधि के शासन' के सिद्धांत से वैचारिक समानता रखती है, जहाँ शासन भी विधि के अधीन होता है। स्मृति ग्रंथों में न्याय की अवधारणा केवल न्यायालयों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक नैतिकता, उत्तरदायित्व एवं लोककल्याण से भी जुड़ी हुई है। न्यायिक प्रक्रिया में साक्ष्य, गवाह, दस्तावेज, शपथ एवं निष्पक्ष निर्णय को महत्व देकर एक संगठित न्याय व्यवस्था की स्थापना का प्रयास किया गया है। दण्ड व्यवस्था का उद्देश्य प्रतिशोध न होकर सामाजिक अनुशासन, अपराध–निवारण तथा धर्म की रक्षा करना माना गया है। इस दृष्टि से स्मृति साहित्य भारतीय न्यायशास्त्र के विकास का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में स्मृति साहित्य की उपयोगिता उसके नैतिक शासन, उत्तरदायी प्रशासन, न्यायप्रिय नेतृत्व, विधि की सर्वोच्चता तथा लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणाओं में निहित है। यदि इन सिद्धांतों को आधुनिक संवैधानिक मूल्यों एवं लोकतांत्रिक आदर्शों के अनुरूप पुनर्व्याख्यायित किया जाए, तो वे सुशासन एवं सामाजिक उत्तरदायित्व के लिए महत्वपूर्ण वैचारिक आधार प्रदान कर सकते हैं।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्मृति ग्रंथों में विधि, न्याय एवं राजधर्म का अंतर्संबंध भारतीय राजनीतिक एवं विधिक दर्शन की एक समन्वित एवं विकसित परंपरा का परिचायक है। यह परंपरा केवल प्राचीन भारतीय समाज की प्रशासनिक संरचना को समझने में ही सहायक नहीं है, बल्कि वर्तमान विधिक एवं राजनीतिक विमर्श को भी ऐतिहासिक गहराई एवं दार्शनिक आधार प्रदान करती है। इस क्षेत्र में तुलनात्मक एवं अंतःविषयक शोध भारतीय विधिशास्त्र एवं राजनीतिक चिंतन के विकास के लिए नई संभावनाओं का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. काणे, पाण्डुरंग वामन (2017) धर्मशास्त्र का इतिहास (भाग 1–5) दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, पृ0 83
2. जायसवाल, के. पी. (2015) हिन्दू राजव्यवस्था, पटना, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृ0 58
3. द्विवेदी, कपिल देव (2021) मनुस्मृति का राजनीतिक दर्शन, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, पृ0 23
4. परमात्मा शरण (2010) प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, नई दिल्ली, मीनाक्षी प्रकाशन, पृ0 94
5. शर्मा, रामशरण (2018) प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ0 38
6. शर्मा, महेश चन्द्र (2022) भारतीय न्याय परंपरा और धर्मशास्त्र, जयपुर, रावत पब्लिकेशन, पृ0 78
7. सिंह, संजय कुमार (2023) प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन एवं राजधर्म वाराणसी, चौखम्बा प्रकाशन, पृ0 54
8. उपाध्याय, वेद प्रकाश (2024) धर्मशास्त्र एवं भारतीय विधि परंपरा का पुनर्मूल्यांकन, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0 47
9. मनुस्मृति, गोरखपुर, गीता प्रेस, पृ0 63
10. याज्ञवल्क्य स्मृति, गोरखपुर, गीता प्रेस, पृ0 48
11. नारद स्मृति,वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, पृ0 32
12. विष्णु स्मृति, वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, पृ0 83
13. कौटिल्य का अर्थशास्त्र, विभिन्न हिन्दी संस्करण, पृ0 83
14. महाभारत (शान्ति पर्व एवं अनुशासन पर्व) गोरखपुर, गीता प्रेस, पृ0 28
15. वाल्मीकि रामायण, गोरखपुर, गीता प्रेस, पृ0 54

ग्रामीण ऋणग्रस्तता पर स्वयं सहायता समूहों के महिलाओं की भूमिका

डॉ. विजय लक्ष्मी कुमारी*

सार :

प्रस्तुत अध्ययन ''डिजिटल बैंकिंग एवं वित्तीय समावेशन का ग्रामीण ऋणग्रस्तता पर प्रभाव'' का अध्ययन है। ग्रामीण भारत में ऋणग्रस्तता एक गंभीर सामाजिक–आर्थिक समस्या रही है। सीमित आय, कृषि पर निर्भरता, प्राकृतिक आपदाएँ, अशिक्षा तथा औपचारिक वित्तीय संस्थानों तक सीमित पहुँच के कारण ग्रामीण परिवार प्रायः साहूकारों एवं अनौपचारिक स्रोतों से ऋण लेने के लिए विवश होते हैं। इस समस्या के समाधान हेतु स्वयं सहायता समूह (Self Help Groups & SHGs) एक प्रभावी माध्यम के रूप में उभरे हैं। विशेष रूप से महिलाओं द्वारा संचालित स्वयं सहायता समूहों ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में वित्तीय समावेशन, बचत की संस्कृति, उद्यमिता विकास तथा ऋण प्रबंधन को बढ़ावा दिया है। महिला स्वयं सहायता समूह न केवल महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाते हैं, बल्कि ग्रामीण परिवारों की ऋण निर्भरता को कम करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समूह आधारित बचत एवं ऋण प्रणाली के माध्यम से महिलाएँ कम ब्याज दर पर ऋण प्राप्त कर पाती हैं, जिससे साहूकारी व्यवस्था पर निर्भरता घटती है। साथ ही, इन समूहों के माध्यम से महिलाओं में वित्तीय साक्षरता, निर्णय लेने की क्षमता तथा सामाजिक जागरूकता का विकास होता है।

यह अध्ययन ग्रामीण ऋणग्रस्तता की समस्या तथा उसके निवारण में महिला स्वयं सहायता समूहों की भूमिका का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

विशिष्ट शब्द : ग्रामीण ऋणग्रस्तता, स्वयं सहायता समूह, महिला सशक्तिकरण, वित्तीय समावेशन, ग्रामीण विकास, बचत, सूक्ष्म वित्त, सामाजिक परिवर्तन आदि।

प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ आज भी ग्रामीण क्षेत्र राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की आधारशिला माने जाते हैं। देश की बड़ी आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है तथा अपनी आजीविका के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि एवं उससे संबंधित गतिविधियों पर निर्भर है। यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ग्रामीण विकास के लिए अनेक योजनाएँ एवं कार्यक्रम संचालित किए गए, तथापि ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा तथा ऋणग्रस्तता जैसी समस्याएँ आज भी व्यापक रूप से विद्यमान हैं। इनमें ग्रामीण ऋणग्रस्तता एक ऐसी गंभीर सामाजिक–आर्थिक समस्या है, जो न केवल ग्रामीण परिवारों की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करती है, बल्कि उनके सामाजिक जीवन, पारिवारिक संबंधों तथा विकास की संभावनाओं को भी बाधित करती है।[1]

ग्रामीण ऋणग्रस्तता का अर्थ उस स्थिति से है जिसमें व्यक्ति या परिवार अपनी आय एवं संसाधनों की तुलना में अधिक ऋण के बोझ तले दब जाता है तथा ऋण की मूल राशि एवं ब्याज का भुगतान करने में असमर्थ हो जाता है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण लेने की प्रवृत्ति केवल उत्पादन संबंधी आवश्यकताओं तक सीमित नहीं है, बल्कि विवाह, शिक्षा, स्वास्थ्य, धार्मिक अनुष्ठान, सामाजिक समारोह तथा आकस्मिक परिस्थितियों की पूर्ति के लिए भी ऋण लिया जाता है। निम्न आय, अस्थिर रोजगार, कृषि उत्पादन की अनिश्चितता तथा प्राकृतिक आपदाओं के कारण अधिकांश ग्रामीण परिवार समय–समय पर ऋण लेने को विवश हो जाते हैं।

ग्रामीण ऋणग्रस्तता की समस्या का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। औपनिवेशिक काल में जमींदारी व्यवस्था, अत्यधिक लगान तथा साहूकारी प्रथा ने किसानों की आर्थिक स्थिति को कमजोर किया। स्वतंत्रता के बाद सहकारी समितियों, ग्रामीण बैंकों तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों के माध्यम से संस्थागत ऋण उपलब्ध कराने के प्रयास किए गए, किन्तु अनेक कारणों से ग्रामीण गरीबों, विशेषकर महिलाओं एवं भूमिहीन

* एम.ए., पी–एच0 डी0, समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
Mob No. : 9472364871, E-mail id : vijayalaxmikumari15@gmail.com

मजदूरों तक इन संस्थाओं की पहुँच सीमित रही। परिणामस्वरूप ग्रामीण समाज का एक बड़ा वर्ग आज भी अनौपचारिक ऋण स्रोतों जैसे महाजनों, साहूकारों तथा स्थानीय धन उधार देने वालों पर निर्भर रहता है।[2]

विशेष रूप से ग्रामीण महिलाओं की स्थिति अधिक चुनौतीपूर्ण रही है। भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक संरचना के कारण महिलाओं को आर्थिक संसाधनों, संपत्ति के स्वामित्व तथा वित्तीय निर्णयों में सीमित अधिकार प्राप्त रहे हैं। अधिकांश ग्रामीण महिलाएँ घरेलू कार्यों एवं कृषि सहायक गतिविधियों में महत्वपूर्ण योगदान देने के बावजूद आर्थिक रूप से आश्रित मानी जाती हैं। यही कारण है कि जब परिवार ऋणग्रस्तता की समस्या से जूझता है, तो उसका प्रतिकूल प्रभाव महिलाओं पर अधिक पड़ता है। उन्हें घरेलू खर्चों में कटौती, पोषण संबंधी समस्याओं तथा अतिरिक्त श्रम का सामना करना पड़ता है।

ऐसी परिस्थितियों में स्वयं सहायता समूह (Self Help Groups—SHGs) ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण के एक प्रभावी साधन के रूप में उभरे हैं। स्वयं सहायता समूह समान सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि वाली महिलाओं का एक छोटा स्वैच्छिक संगठन होता है, जो नियमित बचत, सामूहिक निर्णय एवं आंतरिक ऋण व्यवस्था के आधार पर कार्य करता है। इन समूहों का मूल उद्देश्य सदस्यों में बचत की आदत विकसित करना, आवश्यकता पड़ने पर सुलभ ऋण उपलब्ध कराना तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहित करना है।

भारत में स्वयं सहायता समूह आंदोलन को संस्थागत स्वरूप प्रदान करने का श्रेय राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) को जाता है, जिसने 1992 में SHG & Bank Linkage Programme प्रारंभ किया। इस कार्यक्रम ने ग्रामीण महिलाओं को बैंकिंग प्रणाली से जोड़ने तथा उन्हें औपचारिक वित्तीय सेवाओं तक पहुँच प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अतिरिक्त, दीनदयाल अंत्योदय योजना राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (DAY & NRLM) ने भी महिला स्वयं सहायता समूहों के विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण में उल्लेखनीय योगदान दिया है।[3]

महिला स्वयं सहायता समूहों की विशेषता यह है कि वे केवल वित्तीय संस्थान के रूप में कार्य नहीं करते, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के माध्यम भी बनते हैं। समूह की नियमित बैठकों, सामूहिक बचत तथा परस्पर सहयोग के माध्यम से महिलाओं में आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता तथा निर्णय लेने की योग्यता का विकास होता है। वे अपने अधिकारों, सरकारी योजनाओं तथा सामाजिक मुद्दों के प्रति अधिक जागरूक होती हैं। इस प्रकार स्वयं सहायता समूह महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के साथ–साथ सामाजिक सशक्तिकरण को भी प्रोत्साहित करते हैं।

ग्रामीण ऋणग्रस्तता को कम करने में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका बहुआयामी है। प्रथम, ये समूह महिलाओं को कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराते हैं, जिससे साहूकारों पर निर्भरता कम होती है। द्वितीय, समूहों के माध्यम से प्राप्त ऋण का उपयोग आय सृजन गतिविधियों में किया जाता है, जिससे परिवार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है। तृतीय, नियमित बचत की प्रक्रिया परिवारों को आकस्मिक परिस्थितियों का सामना करने में सक्षम बनाती है। चतुर्थ, वित्तीय साक्षरता एवं बैंकिंग सेवाओं तक पहुँच के कारण महिलाएँ अपने वित्तीय संसाधनों का अधिक प्रभावी प्रबंधन कर पाती हैं।

वर्तमान वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के दौर में वित्तीय समावेशन को समावेशी विकास का महत्वपूर्ण आधार माना जा रहा है। वित्तीय समावेशन का उद्देश्य समाज के प्रत्येक वर्ग को बैंकिंग, बचत, ऋण, बीमा एवं अन्य वित्तीय सेवाओं तक पहुँच प्रदान करना है। महिला स्वयं सहायता समूह इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य कर रहे हैं। ये समूह वित्तीय सेवाओं को ग्रामीण गरीब महिलाओं तक पहुँचाकर सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं को कम करने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

बिहार सहित भारत के अनेक राज्यों में महिला स्वयं सहायता समूहों ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सकारात्मक परिवर्तन लाने का कार्य किया है। इन समूहों के माध्यम से लाखों महिलाएँ स्वरोजगार गतिविधियों से जुड़कर अपनी आय बढ़ाने में सफल हुई हैं। साथ ही, ग्रामीण परिवारों की ऋणग्रस्तता में कमी तथा जीवन स्तर में सुधार के संकेत भी प्राप्त हुए हैं। यद्यपि विभिन्न क्षेत्रों में SHGs की सफलता के स्तर में भिन्नता देखी जाती है, फिर भी ग्रामीण विकास एवं महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में इनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता।

ग्रामीण ऋणग्रस्तता : अवधारणा एवं कारण – ग्रामीण ऋणग्रस्तता का तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें ग्रामीण परिवार अपनी आय से अधिक व्यय करने के कारण ऋण लेने के लिए विवश हो जाते हैं और ऋण का भुगतान समय पर नहीं कर पाते।

ग्रामीण ऋणग्रस्तता के प्रमुख कारण

1. कृषि की अनिश्चितता
- वर्षा पर निर्भर कृषि।
- फसल नष्ट होने का जोखिम।
- बाजार मूल्य में उतार–चढ़ाव।

2. गरीबी एवं निम्न आय
- सीमांत एवं लघु किसानों की आय कम होना।
- रोजगार के सीमित अवसर।
- सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यय
- विवाह, मृत्यु संस्कार एवं अन्य सामाजिक आयोजनों पर अत्यधिक खर्च।

4. स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ
- गंभीर बीमारियों के उपचार हेतु ऋण लेना।

5. **साहूकारी व्यवस्था**
- उच्च ब्याज दरों पर ऋण उपलब्ध होना।

6. **वित्तीय संस्थाओं तक सीमित पहुँच**
- बैंकिंग सुविधाओं का अभाव।
- दस्तावेजी प्रक्रियाओं की जटिलता।

स्वयं सहायता समूह : एक परिचय – स्वयं सहायता समूह 10 से 20 सदस्यों का एक स्वैच्छिक समूह होता है जो समान सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि वाले लोगों द्वारा गठित किया जाता है। समूह के सदस्य नियमित बचत करते हैं और उसी निधि से जरूरतमंद सदस्यों को ऋण प्रदान करते हैं।

स्वयं सहायता समूहों की विशेषताएँ –
- नियमित बचत।
- लोकतांत्रिक निर्णय प्रक्रिया।
- सामूहिक उत्तरदायित्व।
- आंतरिक ऋण व्यवस्था।
- बैंक से जुड़ाव।
- सामाजिक एवं आर्थिक विकास।

स्वयं सहायता समूहों में महिलाओं की भूमिका

बचत की संस्कृति का विकास : महिलाएँ SHGs के माध्यम से नियमित बचत करती हैं। छोटी–छोटी बचतें मिलकर एक बड़ी सामूहिक निधि का निर्माण करती हैं, जिससे समूह के सदस्य आवश्यकता पड़ने पर ऋण प्राप्त कर सकते हैं।

सस्ती दर पर ऋण उपलब्ध कराना : समूहों के माध्यम से महिलाओं को कम ब्याज दर पर ऋण प्राप्त होता है। इससे साहूकारों पर निर्भरता कम होती है और ऋणग्रस्तता की समस्या घटती है।

वित्तीय साक्षरता में वृद्धि : स्वयं सहायता समूह महिलाओं को बैंकिंग, लेखा–जोखा तथा वित्तीय प्रबंधन का प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। इससे महिलाएँ अपने आर्थिक निर्णय स्वयं लेने में सक्षम बनती हैं।

स्वरोजगार एवं उद्यमिता का विकास : महिलाएँ समूहों से प्राप्त ऋण का उपयोग विभिन्न आय–वर्धक गतिविधियों में करती हैं, जैसे – डेयरी व्यवसाय, पशुपालन, मधुमक्खी पालन, सिलाई–कढ़ाई, हस्तशिल्प, लघु व्यापार : इन गतिविधियों से आय में वृद्धि होती है और ऋण चुकाने की क्षमता विकसित होती है।

सामाजिक सशक्तिकरण : SHGs महिलाओं में नेतृत्व क्षमता, आत्मविश्वास तथा सामूहिक निर्णय लेने की प्रवृत्ति का विकास करते हैं। इससे उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार होता है।

परिवार की आर्थिक सुरक्षा : महिलाएँ प्राप्त ऋण का उपयोग बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं तथा घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति में करती हैं। इससे परिवार की आर्थिक स्थिरता बढ़ती है।

अतः वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य ग्रामीण ऋणग्रस्तता की समस्या का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करना है कि स्वयं सहायता समूहों में महिलाओं की भागीदारी किस प्रकार ग्रामीण परिवारों की ऋण निर्भरता को कम करती है तथा आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करती

है। यह अध्ययन न केवल ग्रामीण विकास की नीतियों को समझने में सहायक होगा, बल्कि महिला सशक्तिकरण एवं वित्तीय समावेशन के क्षेत्र में भविष्य की योजनाओं के निर्माण हेतु भी उपयोगी सिद्ध होगा।

साहित्य समीक्षा

ग्रामीण ऋणग्रस्तता तथा स्वयं सहायता समूहों (SHGs) में महिलाओं की भूमिका पर राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अनेक अध्ययन किए गए हैं। इन अध्ययनों में महिला सशक्तिकरण, वित्तीय समावेशन, गरीबी उन्मूलन, सामाजिक पूंजी निर्माण तथा ग्रामीण विकास के विभिन्न आयामों का विश्लेषण किया गया है –

शिवराम, के. (2024) इन्होंने उपलब्ध साहित्य का विश्लेषण करते हुए बताया कि स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक उत्थान, उद्यमिता विकास तथा वित्तीय समावेशन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अध्ययन में यह भी इंगित किया गया कि SHGs महिलाओं को ऋण प्रबंधन तथा बचत की संस्कृति विकसित करने में सहायता प्रदान करते हैं।[4]

डॉ. विजय महाजन (2023) महाजन ने ग्रामीण वित्तीय समावेशन और स्वयं सहायता समूहों के अंतर्संबंध का अध्ययन करते हुए पाया कि SHGs ग्रामीण महिलाओं को औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से जोड़ने का प्रभावी माध्यम हैं। अध्ययन में बताया गया कि समूह आधारित बचत एवं ऋण प्रणाली ने ग्रामीण परिवारों की साहूकारों पर निर्भरता को कम किया है। लेखक के अनुसार स्वयं सहायता समूहों की सदस्य महिलाओं में वित्तीय अनुशासन, बचत की आदत तथा ऋण चुकाने की क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। अध्ययन यह भी इंगित करता है कि SHGs ने ग्रामीण महिलाओं को उद्यमिता की ओर प्रेरित किया, जिससे उनकी आय में वृद्धि हुई और ऋणग्रस्तता में कमी आई।[5]

डॉ. राधा कृष्णन एवं डॉ. सीमा शर्मा (2022) इन विद्वानों ने राजस्थान, बिहार एवं मध्य प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में महिला स्वयं सहायता समूहों की भूमिका का तुलनात्मक अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि SHGs से जुड़ी महिलाओं की आर्थिक स्थिति गैर–सदस्य महिलाओं की तुलना में बेहतर थी। समूहों के माध्यम से प्राप्त ऋण का उपयोग कृषि, पशुपालन तथा लघु उद्यमों में किया गया, जिससे पारिवारिक आय में वृद्धि हुई। अध्ययन का प्रमुख निष्कर्ष यह था कि स्वयं सहायता समूहों ने महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया और ग्रामीण ऋणग्रस्तता को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[6]

डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन (2021) स्वामीनाथन ने ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण पर स्वयं सहायता समूहों के प्रभाव का विश्लेषण किया। अध्ययन में पाया गया कि SHGs ने महिलाओं को बचत, निवेश और आय सृजन गतिविधियों के लिए प्रेरित किया। लेखक के अनुसार समूहों के माध्यम से प्राप्त वित्तीय सहायता ने महिलाओं की साहूकारों पर निर्भरता को कम किया तथा ऋण प्रबंधन की क्षमता को बढ़ाया। अध्ययन यह भी बताता है कि समूह आधारित गतिविधियों से महिलाओं में नेतृत्व क्षमता एवं आत्मविश्वास का विकास हुआ।[7]

डॉ. अंजली वर्मा (2020) अंजली वर्मा ने वित्तीय साक्षरता और स्वयं सहायता समूहों के संबंध का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि SHGs महिलाओं को केवल ऋण उपलब्ध नहीं कराते, बल्कि उन्हें वित्तीय प्रबंधन एवं बचत की शिक्षा भी प्रदान करते हैं। अध्ययन के अनुसार वित्तीय साक्षरता में वृद्धि होने से महिलाओं की ऋण लेने की प्रवृत्ति अधिक योजनाबद्ध हुई और अनावश्यक ऋण भार में कमी आई।[8]

डॉ. एस. के. मिश्रा (2019) मिश्रा ने बिहार एवं उत्तर प्रदेश के चयनित ग्रामीण क्षेत्रों में SHGs की भूमिका का मूल्यांकन किया। अध्ययन में पाया गया कि समूह से जुड़ी महिलाओं के परिवारों में ऋणग्रस्तता का स्तर अपेक्षाकृत कम था। समूह आधारित ऋण प्रणाली ने उच्च ब्याज दर वाले अनौपचारिक ऋण स्रोतों पर निर्भरता को कम किया। लेखक ने निष्कर्ष निकाला कि SHGs ग्रामीण निर्धनता और ऋणग्रस्तता दोनों को कम करने का प्रभावी साधन हैं।[9]

डॉ. पुष्पा सिन्हा (2018) डॉ. सिन्हा ने महिला स्वयं सहायता समूहों और सूक्ष्म वित्त (Microfinance) के संबंध का अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि SHGs के माध्यम से महिलाओं में बचत की संस्कृति विकसित हुई। महिलाओं ने अपने समूहों के माध्यम से नियमित बचत की और आवश्यकता पड़ने पर आंतरिक ऋण प्राप्त किया। इससे आकस्मिक परिस्थितियों में साहूकारों से ऋण लेने की आवश्यकता कम हुई।[10]

डॉ. सी. रंगराजन (2017) रंगराजन ने वित्तीय समावेशन और ग्रामीण विकास पर अपने अध्ययन में SHGs को वित्तीय समावेशन का महत्वपूर्ण उपकरण माना। उन्होंने बताया कि ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं की

सीमित पहुँच के कारण गरीब परिवार वित्तीय बहिष्करण का सामना करते हैं। SHGs इस अंतर को भरने का कार्य करते हैं तथा महिलाओं को औपचारिक वित्तीय संस्थानों से जोड़ते हैं।[11]

डॉ. रुक्मिणी बनर्जी (2016) रुक्मिणी बनर्जी ने महिला सशक्तिकरण के सामाजिक आयामों का अध्ययन करते हुए पाया कि SHGs महिलाओं में सामूहिक चेतना और सामाजिक सहभागिता को बढ़ावा देते हैं। समूहों से जुड़ी महिलाओं की पारिवारिक निर्णयों में भागीदारी बढ़ी तथा उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ। अध्ययन ने आर्थिक सशक्तिकरण और सामाजिक सशक्तिकरण के बीच सकारात्मक संबंध स्थापित किया।[12]

डॉ. एन. आर. भट्टाचार्य (2015) भट्टाचार्य ने पश्चिम बंगाल के ग्रामीण क्षेत्रों में SHGs के प्रभाव का अध्ययन किया। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि समूहों के माध्यम से महिलाओं की घरेलू आय में वृद्धि हुई तथा ऋण चुकाने की क्षमता मजबूत हुई। समूह सदस्यों ने बचत और ऋण के बेहतर प्रबंधन का प्रदर्शन किया।[13]

डॉ. बीना अग्रवाल (2014) बीना अग्रवाल ने महिला समूहों और सामाजिक पूंजी के निर्माण पर बल देते हुए कहा कि SHGs केवल आर्थिक संस्था नहीं हैं, बल्कि सामाजिक सहयोग एवं सामूहिक निर्णय की प्रक्रिया को भी मजबूत करते हैं। अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला गया कि सामाजिक पूंजी का निर्माण ग्रामीण ऋणग्रस्तता को कम करने में सहायक होता है।[14]

डॉ. सी. एस. रेड्डी एवं डॉ. ईश्वर राव (2013) इनका अध्ययन आंध्र प्रदेश में स्वयं सहायता समूह आंदोलन की सफलता पर आधारित था। अध्ययन में पाया गया कि SHGs ने महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान की तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत किया। समूहों के माध्यम से महिलाओं की ऋण पहुँच में सुधार हुआ।[15]

डॉ. मोहम्मद यूनुस (2012) माइक्रोफाइनेंस के जनक माने जाने वाले मोहम्मद यूनुस ने अपने अध्ययन में बताया कि गरीब महिलाओं को छोटे ऋण उपलब्ध कराने से गरीबी और ऋणग्रस्तता दोनों को कम किया जा सकता है। उनके अनुसार समूह आधारित ऋण प्रणाली आर्थिक विकास का प्रभावी माध्यम है।[16]

उद्देश्य

1. ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल बैंकिंग के विस्तार का अध्ययन करना।
2. वित्तीय समावेशन की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करना।
3. डिजिटल बैंकिंग का ग्रामीण ऋणग्रस्तता पर प्रभाव ज्ञात करना।
4. औपचारिक एवं अनौपचारिक ऋण स्रोतों की भूमिका का मूल्यांकन करना।
5. ग्रामीण वित्तीय साक्षरता एवं डिजिटल जागरूकता के स्तर का अध्ययन करना।
6. वित्तीय समावेशन को प्रभावी बनाने हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

परिकल्पनाएँ

1. डिजिटल बैंकिंग के विस्तार से ग्रामीण ऋणग्रस्तता में कमी आती है।
2. वित्तीय समावेशन एवं ग्रामीण ऋणग्रस्तता के बीच नकारात्मक सम्बन्ध विद्यमान है।
3. डिजिटल वित्तीय साक्षरता का स्तर जितना अधिक होगा, ऋणग्रस्तता का जोखिम उतना कम होगा।
4. औपचारिक ऋण संस्थानों तक पहुँच बढ़ने से साहूकारी ऋण पर निर्भरता कम होती है।
5. डिजिटल ऋण सेवाओं का अनियंत्रित उपयोग ग्रामीण ऋणभार को बढ़ा सकता है।

निष्कर्ष

ग्रामीण ऋणग्रस्तता भारतीय ग्रामीण समाज की एक जटिल एवं बहुआयामी समस्या है, जिसका संबंध केवल आर्थिक पक्ष से नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक एवं संरचनात्मक कारकों से भी है। सीमित आय, कृषि पर अत्यधिक निर्भरता, बेरोजगारी, प्राकृतिक आपदाएँ, अशिक्षा तथा वित्तीय संसाधनों की कमी के कारण ग्रामीण परिवार अक्सर ऋण लेने के लिए विवश हो जाते हैं। परिणामस्वरूप अनेक परिवार दीर्घकालीन ऋणग्रस्तता के चक्र में फँस जाते हैं, जिससे उनकी सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति बाधित होती है।

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि स्वयं सहायता समूह (Self Help Groups) ग्रामीण ऋणग्रस्तता को कम करने में अत्यंत प्रभावी भूमिका निभा रहे हैं। विशेष रूप से महिलाओं द्वारा संचालित स्वयं सहायता समूहों ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में वित्तीय समावेशन, बचत की प्रवृत्ति, सूक्ष्म वित्त व्यवस्था तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया है। समूह आधारित बचत एवं ऋण प्रणाली ने महिलाओं को साहूकारों और महाजनों पर निर्भर रहने की आवश्यकता को कम किया है तथा उन्हें कम ब्याज दर पर सुलभ ऋण उपलब्ध कराया है।

अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि स्वयं सहायता समूह केवल वित्तीय सहायता प्रदान करने वाली संस्था नहीं हैं, बल्कि वे महिला सशक्तिकरण के प्रभावी माध्यम भी हैं। SHGs के माध्यम से महिलाओं में

आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता, निर्णय लेने की योग्यता तथा सामाजिक जागरूकता का विकास हुआ है। समूहों से जुड़ी महिलाएँ पारिवारिक एवं सामुदायिक निर्णयों में अधिक सक्रिय भूमिका निभाने लगी हैं, जिससे उनकी सामाजिक स्थिति में भी सुधार हुआ है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महिला स्वयं सहायता समूह ग्रामीण ऋणग्रस्तता की समस्या के समाधान का एक सशक्त माध्यम हैं। ये समूह महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने, सामाजिक रूप से सशक्त करने तथा ग्रामीण परिवारों की ऋण निर्भरता को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। यदि इन समूहों को उचित प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता एवं संस्थागत सहयोग प्रदान किया जाए, तो वे ग्रामीण विकास, महिला सशक्तिकरण एवं समावेशी आर्थिक प्रगति के महत्वपूर्ण आधार स्तंभ सिद्ध हो सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारत सरकार, ग्रामीण विकास मंत्रालय (2023) दीनदयाल अंत्योदय योजना राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (DAY & NRLM) वार्षिक प्रतिवेदन, नई दिल्ली, भारत सरकार।
2. प्रसाद, बी. एन. (2020) ग्रामीण गरीबी, ऋणग्रस्तता एवं विकास, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन।
3. नाबार्ड (NABARD) (2022) भारत में सूक्ष्म वित्त की स्थिति (Status of Microfinance in India) मुंबई, राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक।
4. शिवराम, के. (2024) "एम्पावरिंग वीमेन इन इंडिया, सेल्फ–हेल्प ग्रुप्स : ए रिव्यू" इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मार्केटिंग मैनेजमेंट, खंड 12, अंक 3, पृ. 186–196।
5. महाजन, विजय (2023) ग्रामीण वित्तीय समावेशन और स्वयं सहायता समूह, नई दिल्ली, सेज प्रकाशन, पृ. 89
6. राधा कृष्णन, एवं शर्मा, सीमा (2022) महिला स्वयं सहायता समूह और ग्रामीण विकास, जयपुर, रावत पब्लिकेशन, पृ. 106
7. स्वामीनाथन, एम. एस. (2021) ग्रामीण अर्थव्यवस्था और महिला सशक्तिकरण, चेन्नई, ओरिएंट ब्लैकस्वान, पृ. 64
8. वर्मा, अंजली (2020) स्वयं सहायता समूह एवं वित्तीय साक्षरता, वाराणसी, भारतीय प्रकाशन, पृ. 58
9. मिश्रा, एस. के. (2019) ग्रामीण ऋणग्रस्तता और स्वयं सहायता समूह, पटना, ज्ञानदीप प्रकाशन, पृ. 34
10. सिन्हा, पुष्पा (2018) महिला सशक्तिकरण और सूक्ष्म वित्त, पटना, लोकभारती प्रकाशन, पृ. 16
11. रंगराजन, सी. (2017) वित्तीय समावेशन और ग्रामीण विकास, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 47
12. बनर्जी, रुक्मिणी (2016) ग्रामीण महिलाओं का सामाजिक सशक्तिकरण, नई दिल्ली, सेज प्रकाशन, पृ. 73
13. भट्टाचार्य, एन. आर. (2015) ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक विकास और स्वयं सहायता समूह, कोलकाता, प्रोग्रेसिव पब्लिशर्स, पृ. 124
14. अग्रवाल, बीना, (2014), महिला समूह और ग्रामीण परिवर्तन, नई दिल्ली, पेंगुइन इंडिया, पृ. 81
15. रेड्डी, सी. एस., एवं राव, ईश्वर, (2013), स्वयं सहायता समूह आंदोलन और ग्रामीण विकास, हैदराबाद, ग्रामीण विकास अध्ययन केंद्र, पृ. 13
16. यूनुस, मोहम्मद, (2012), गरीबों का बैंक और सूक्ष्म वित्त, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ. 49

हिंदी सिनेमा में प्रवासी भारतीय

विपिन सिंह*
भूमिका विक्रम सिंह**

शोध सार -

यह शोध आलेख हिन्दी सिनेमा के द्वारा प्रवासी भारतीयों का भारतीय संस्कृति संरक्षण और विस्तारण के विषय पर केन्द्रित है। सिनेमा समाज का प्रतिबिंब है। यह भारत और विदेश में रह रहे लोगों की भावनाओं का तथ्य तथा सत्य आधारित प्रदर्शन करता है। प्रवासी भारतीयों के अपने देश के प्रति प्रेम और भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा को सिनेमा समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है।

इस शोध आलेख के अंतर्गत दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे (1995), परदेस(1997) और कभी खुशी कभी ग़म(2001) जैसी फिल्मों का विश्लेषण करके उनमें प्रवासी भारतीयों की स्थिति को समझने का प्रयास किया गया है। इस आलेख में यह दिखाया गया है कि कैसे सिनेमा के शुरुआती दौर में प्रवासी भारतीयों को नकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता था लेकिन वक्त के साथ हिंदी सिनेमा प्रवासी भारतीयों की सांस्कृतिक आस्था को भी समाज के सामने लाती है और उन्हें एक सकारात्मक पहचान देती है। समाज में परिवर्तन के साथ सिनेमा में भी परिवर्तन आने लगते है, 90 के दशक के बाद से सिनेमा का दृष्टिकोण बदलता है और पश्चिमी दृष्टि का प्रभाव बढ़ता है लेकिन हम तब भी अपने भारतीय मूल्य नहीं भूलते और ये फिल्में आधुनिक संवेदनशीलता को लेकर सामने आती हुई दिखाई देती हैं। यह फिल्में भारतीयता और आधुनिकता के सफल मिश्रण के रूप में उपयुक्त साबित होती हैं।

बीच शब्द: हिंदी सिनेमा, संस्कृति, प्रवासी भारतीय, समाज, उदारीकरण।

सिनेमा आधुनिक काल में सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम है। यह केवल मनोरंजन का साधन नहीं बल्कि समाज को जोड़ने का एक माध्यम भी है। समाज की बात करके, सामाजिक मुद्दों को प्रस्तुत करके, सिनेमा स्वयं ही समाज से जुड़ जाता है। अन्य कलाओं की अपेक्षा सिनेमा का काल भले ही अल्प है, किंतु इस अल्प काल में भी सिनेमा ने अपनी अलग पहचान स्थापित की है। साहित्य से आत्मा, चित्रकला से शरीर और रंगमंच से गतिशीलता प्राप्त कर सिनेमा एक विकसित होती कला के रूप में उभरता है और समाज के साथ अपना जीवंत संवाद स्थापित करता है। फिल्में साक्षरता, धर्म, राजनीति, क्षेत्र आदि के घेरे को तोड़ व्यापक जन समाज से जुड़ती हैं। फिल्म समीक्षक जवरीमल्ल पारख के शब्दों में "हिंदी सिनेमा आरंभ से ही संविधान की मूल आत्मा की अभिव्यक्ति का सबसे लोकप्रिय और सशक्त माध्यम रहा है। फिल्मों को मनोरंजन के लोकप्रिय माध्यम के रूप में ही देखा जाता रहा है।"[1] इसी विषय में प्रसिद्ध राजनेता राम मनोहर लोहिया कहते हैं कि - भारत को एक करने वाली दो ही शक्तियां हैं - एक गांधी और दूसरी फ़िल्में।

"प्रवास एक सार्वभौमिक घटना है। सिर्फ मनुष्य ही नहीं बल्कि पशु-पक्षी भी भोजन और आश्रय की तलाश में एक भौगोलिक सीमा से दूसरी भौगोलिक सीमा में प्रवास करते हैं। एक समुदाय के रूप में विकसित होने के साथ ही मानव-कबीलों का अपने उद्गम स्थान से दूसरे स्थान पर अस्थायी, पारिस्थितिक और स्थायी

* शोधार्थी– हिंदी विभाग, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली
Mobile: +91-9794943087, Email : ssinghvipin098@gmail.com
** शोधार्थी– हिंदी विभाग, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली
Mobile: +91-6388422995, Email-bhoomikavikramsingh2002@gmail.com

विस्थापन होते रहा है।"[2] "भारतीय प्रवासियों के इतिहास पर नजर डालें तो विदेश-प्रवास की प्रथा को भारत में स्थापित करने में बौद्ध भिक्षुओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है। परंतु आधुनिक भारत में विदेश-प्रवास का अधिकांशतः निर्धारण औपनिवेशीकरण और व्यापारिक योजनाओं ने किया है। वर्तमान वैश्विक युग में आवागमन और संचार के असीमित विकास से विदेश-प्रवास एक आम घटना बन चुका है। रोजाना ही कितने भारतीय शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यटन और रोजगार आदि कारणों से दूसरे देशों में पहुंचते हैं।"[3]

भारत में आजादी के पूर्व से ही भारतीय विदेशों में बसने लगे थे, कभी गिरमिटिया की तरह तो कभी जीवन को वैभवशील बनाने के लिए। आज भी विश्व में प्रवासी भारतीयों की संख्या सबसे अधिक है। "विदेश मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार जनवरी 2024 में लगभग 100 से अधिक देशों में 3 करोड़ 54 लाख भारतीय स्थापित हैं।"[4] "भारतीय डायस्पोरा की सबसे अधिक संख्या संयुक्त अरब अमीरात, अमेरिका और सउदी अरब में उपस्थित है। प्रवासी भारतीयों की सबसे खास बात यह है कि ये समूचे ग्लोब पर विद्यमान हैं।"[5]

हिंदी सिनेमा बहुत से सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक मुद्दों को केंद्र में रखकर उसकी अभिव्यक्ति करता है। प्रवासी समुदाय के जीवन मुद्दों को यह बड़े ही संवेदनशील ढंग से रखता है। हालांकि शुरूआत में सिनेमा सिर्फ मनोरंजन के साधन के रूप में दिखाई देता है, पर समाज के पक्ष को सम्मुख रखने में इसकी भूमिका निर्णायक है। यह भी विचारणीय है कि शुरुआती दौर में सिनेमा को हीन दृष्टि से देखा जाता था, बहुत से विचारकों का मानना था कि सिनेमा युवाओं में गलत प्रवृत्तियों को बढ़ावा देता है ; पर वक्त के साथ सिनेमा का प्रभाव समाज पर सकारात्मक रूप में दिखाई दिया जिससे इसे कला के क्षेत्र में सम्मान प्राप्त हुआ। इसे समाज के सभी वर्गों तक पहुंचाने का सर्वोत्तम साधन भी माना गया।

प्रवासी भारतीयों को हिंदी सिनेमा इसलिए और भी प्रासंगिक लगता है क्योंकि वह इन्हें स्वदेश से तो जोड़ता ही है साथ ही एक अन्य देश में विदेशियों के मध्य उन्हें आभासी एकजुटता का बोध कराता है। इसी संदर्भ में फिल्मविद् विजय मिश्र ने बॉलीवुड सिनेमा को एक ऐसे वाहन की संज्ञा दी है जो ग्लोबल को लोकल तक लाता है। सिनेमा से ग्लोबल और लोकल दोनों स्तरों के लोग जुड़ पाते हैं, क्योंकि वह समाज की सच्चाई को दिखाता है। जवरीमल्ल पारख के शब्दों में - "साहित्य की तरह सिनेमा भी अपनी प्राणशक्ति समाज से प्राप्त करता है, इसलिए सिनेमा पर विचार करते हुए समाज के साथ उसके संबंधों पर विचार करना आवश्यक है। सिनेमा चाहे मनोरंजन के लिए हो या व्यवसाय के लिए या फिल्म कला की उत्कर्ष की अभिव्यक्ति के लिए, उसमें अपने दौर का समाज किसी न किसी रूप में व्यक्त हुए बिना नहीं रह सकता। यह अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष और अतिरंजित रूप में भी हो सकती है और अप्रत्यक्ष और रचनात्मक रूप में भी।"[6]

हिंदी सिनेमा में प्रवासी भारतीयों का उल्लेख तो 1970 में मनोज कुमार द्वारा निर्देशित 'पूरब और पश्चिम' फिल्म में ही हो गया था। शुरुआती दौर के सिनेमा में प्रवासी भारतीय किरदार को नकारात्मक रूप में दिखाया जाता था, जहां वह भोग लिप्सा में पड़ा हुआ दिखाई देता है। पूरब और पश्चिम फिल्म में नायिका धूम्रपान करती, शराब पीती और पश्चिमी सभ्यता के अनुसार कपड़े पहनती हुई और ऐसी ही अन्य गैर-भारतीय गतिविधियां करते हुए दिखाई देती है। इस फिल्म में नायक मनोज कुमार जिसका नाम भारत है, वह विदेश जाता है और वहां भारतीयों की छवि को सुधारने का प्रयास करता है। फ़िल्म के अंत तक नायिका प्रीति अपनी वेशभूषा और जीवनशैली में परिवर्तन करती है और भारतीय मूल्य के अनुसार आदर्श भारतीय नारी बनकर वापस भारत देश लौटती है। इससे यह स्पष्ट है कि 90 के दशक से पूर्व की फिल्मों में प्रवासी भारतीय किरदार को शर्मिंदा किया जाता था और नायक का दायित्व होता था उसकी देश वापसी कराना।

1990 में उदारीकरण के बाद जब भारत के द्वार सभी देशों के लिए खुले तो सिनेमा जनसमाज के बीच व्यापक रूप से पहुंचने लगा। भारत सरकार द्वारा नई नीतियों को शुरू किया गया जिससे मीडिया दर्शकों को न केवल कई हिंदी और क्षेत्रीय फिल्मों तक बल्कि नवीनतम विदेशी फिल्मों तक भी पहुंच प्रदान हुई।

फिल्मों में स्वदेशी और विदेशी संस्कृतियों के बीच मिश्रित संबंधों की छवियों के प्रदर्शन से विश्व अर्थव्यवस्था के साथ भारत के बदलते संबंधों को दर्शाने का चलन तेजी से बढ़ने लगा। विदेशो में स्थापित भारतीयों ने सिनेमा में निवेश करना शुरू कर दिया जिसका प्रभाव यह हुआ कि अब सिनेमा सिर्फ देश की नहीं बल्कि डायसपोरा की भी बातें करने लगा। वरिष्ठ फिल्म समीक्षक अजय ब्रह्मात्मज के शब्दों में - "यही वह दशक था जब हमारा हिंदी सिनेमा बॉलीवुड नाम से प्रचलित हो गया... ग्लोबलाइजेशन के बाद एन आर आई दर्शक मिलें, विदेशों में हिन्दी फिल्में दिखाई जाने लगीं।"[7] ऐसी फिल्मों का निर्माण होने लगा जिनमें प्रवासी भारतीय नायक के रूप में दिखने लगे। वह भारतीय संस्कृति और पश्चिमी सभ्यता के मिश्रण स्वरूप नज़र आने लगा। अब नायक सभ्य के साथ- साथ मॉडर्न भी दिखने लगे थे।

सिनेमा के विकास के साथ फिल्मों की विषय वस्तु सिर्फ प्रवासी भारतीय के रहन-सहन, पहनावे, जीवनशैली आदि तक सीमित न रही, बल्कि वह इनकी समस्याओं एवं विभिन्न पहलुओं पर भी केंद्रित हुई। पूर्व की फिल्मों से इतर अब प्रवासी भारतीयों को मेजबान देश में एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में भी दिखाया जाने लगा। अब फिल्मों में पश्चिमी सौंदर्यशास्त्र की झलक साफ दिखने लगी थी। दिल वाले दुल्हनिया ले जाएंगे (1995), कभी खुशी कभी ग़म (2001), परदेश (1997), नमस्ते लन्दन (2007), आदि कुछ ऐसी फिल्में हैं जो प्रवासी भारतीयों के जीवन को तथ्यपरक एवं भावक्तापूर्ण तरीके से प्रस्तुत करती हैं।

दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे - 1995 में बनी यह फिल्म अपने दशक की सबसे लोकप्रिय फिल्म रही है। यह फिल्म दो प्रवासी भारतीयों कि प्रेम कहानी को केंद्र में लेकर चलती है। सिमरन(काजोल) राज(शाहरुख खान) से यूरोप यात्रा पर मिलती है और उसे पसंद नहीं करती, लेकिन वक्त के साथ दोनों एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं। सिमरन के पिता ने उसकी शादी भारत में अपने दोस्त के बेटे से तय कर दी होती है और वो सपरिवार भारत चले जाते हैं हमेशा के लिए। राज सिमरन की खोज में भारत जाता है उसके परिवार का दिल जीत के सिमरन से शादी करने की योजना बनाता है और वहां सफ़ल भी होता है। अंत में सिमरन के पिताजी उनके रिश्ते के लिए तैयार हो जाते हैं।

इस फिल्म के चित्र भले ही विदेशी सौंदर्यशास्त्र से ओत-प्रोत हैं किंतु आत्मा हिन्दुस्तानी है। फिल्म की शुरुआत में ही चौधरी बलदेव सिंह आत्मलाप में कहता है - "...लेकिन कभी ना कभी मैं जाऊंगा जरूर अपने देश को अपने पंजाब को।"[8] भले ही उसका जीवन लन्दन में सुचारू ढंग से चल रहा है लेकिन वह उसे आज तक अपना देश नहीं मान पाया, उसकी लालसा है कि वो कभी ना कभी वापस अपनी धरती पर जाएगा जरूर। फिल्म में आया गीत "घर आजा परदेशी तेरा देश बुलाए रे.."[9] भी प्रवासियों की स्थिति को दर्शाता है कि वो चाह कर भी अपने देश नहीं जा पाते जबकि उन्हें हर पल अपने देश की याद आती रहती है। बलदेव सिंह की वेशभूषा यानी कुर्ता, पैजामा, धोती आदि भारतीय संस्कृति का सूचक है। घर की महिलाएं भी सलवार सूटों में ही नज़र आती हैं और दिन की शुरुआत "ॐ जय जगदीश हरे" से ही होती दिखाई देती है। राज के किरदार को शुरुआत में भारतीय सभ्यता से दूर दिखाया गया है लेकिन अंत तक वह अपनी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने लगता है। वह एक स्थान पर कहता है - "मैं एक हिंदुस्तानी हूं...और मैं जानता हूं कि एक हिंदुस्तानी लड़की की इज्जत क्या होती है।"[10] वह चाहता तो सिमरन को भगा कर भी विवाह कर सकता था लेकिन उसके भारतीय संस्कारों ने उसको ये इजाजत नहीं दी। राज भारतीय सभ्यता के अनुरूप सिमरन के परिवार का दिल जीत कर सिमरन से विवाह करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस फिल्म ने विदेशों में भी भारतीय मूल्य के प्रति निष्ठा को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया।

कभी खुशी कभी ग़म - करण जौहर द्वारा लिखित एवं निर्देशित यह फिल्म 2001 में रिलीज़ हुई थी। यह फिल्म दिल्ली में रह रहे रायचंद परिवार की कहानी है। यश रायचंद(अमिताभ बच्चन) के दो बेटे हैं राहुल(शाहरुख खान) और रोहन(ह्रितिक रोशन)। राहुल को यश और नंदिनी ने पैदा होते ही गोद ले लिया था,

और वो उसे अपने सगे बेटे जैसा ही प्यार करते हैं। राहुल लन्दन से एमबीए की पढ़ाई करके भारत वापस आता है और अपने पिता के कदमों पर चलने के लिए तैयार रहता है। राहुल को इसी दौरान अंजली(काजोल) मिलती है, जो कि एक चंचल और जीवंत स्वभाव की लड़की है। राहुल अंजली एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं लेकिन यश रायचंद को यह संबंध क़ुबूल नहीं होता और राहुल विवश होकर अंजली से संबंध तोड़ने के लिए उसके घर जाता है। अंजली के पिता को सरसैय्या पर पड़े देख राहुल अंजली से विवाह कर लेता है जिसके कारण यश उसे परिवार से अलग कर देता है। रोहन को जब यह पूरी बात पता चलती है तो वह राहुल को वापस लाने की शपथ लेता है। रोहन लन्दन पहुंचता है और छद्म नाम से राहुल के घर ठहरता है और धीरे-धीरे वह राहुल और अंजली के हृदय में घर की याद को जगाने लगता है। रोहन, यश और नंदिनी को पूजा के आश्वासन से लन्दन बुलाता है जहां वह उनसे राहुल और अंजली की मुलाकात कराता है। इसी समय यश की मां की मृत्यु हो जाती है और सब भारत पहुंच जाते है। दादी के अंतिमसंस्कार के बाद राहुल वापस आने को तैयार होता है तब यश उससे माफ़ी मांगता है और घर के दरवाजे राहुल और अंजली के लिए खोल देता है। फिल्म का अन्त रोहन और पूजा के विवाह से होता है जहां राहुल और अंजली को भी विवाहित रूप में दिखाया गया है।

इस फिल्म में शुरुआत से ही भारतीय सभ्यता एवं संस्कारों की झलक दिखाई देती है लेकिन अंतराल के बाद यह और भी गहराई से देखी जा सकती है। लन्दन में रहते हुए भी अंजली की सुबह की शुरुआत "सारे जहां से अच्छा हिंदुस्तान हमारा"[11] गीत से होती है। भारत से प्रवास किए हुए इतने समय के बाद भी वो भारतीय वेशभूषा पहनती है, पूजा पाठ करती है और आदर्श भारतीय नारी के रूप में जीवन व्यतीत करती है। उसके विपरित उसकी छोटी बहन पूजा पश्चिमी सभ्यता का जीता जागता नमूना है, लेकिन फिल्म के अंत तक वह भी भारतीय मूल्यों को स्वीकार कर उसके अनुरूप जीवनयापन करने लगती है। फ़िल्म में सभी किरदार भारतीय त्योहारों को विदेशियों के साथ भव्य स्तर पर मनाते हुए भी दिखाई देते हैं। रोहन भारतीय संस्कारों का परिचय देते हुए "वाह! वाह! राम जी जोड़ी क्या बनाई है... भईया और भाभी को बधाई है बधाई है!"[12] गीत गाता है, जिसमें वह भाई और भाभी को राम और सीता के समतुल्य रखता है। फिल्म में अंजली का बेटा अपनी मां के लिए भारत का राष्ट्रगान प्रस्तुत करता है, जिसको सुनते ही गैर भारतीय लोग भी सम्मान के लिए खड़े हो जाते हैं। इससे यह संदेश स्पष्ट होता है कि प्रवासी भारतीयों ने अपनी सभ्यता और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हुए उसका विस्तार करने में भी भूमिका निभाई है।

परदेस - 1997 में सुभाष घई द्वारा निर्देशित यह फिल्म, भारतीय और विदेशी संस्कृति के द्वंद्व को केंद्र में लेकर आती है। किशोरी लाल(अमरीश पुरी) नामक भारतीय-अमेरिकी व्यावसायी अपने पुत्र राजीव का विवाह भारत में अपने मित्र की पुत्री गंगा(महिमा चौधरी) से कराना चाहता है। इसी सिलसिले में राजीव और किशोरीलाल के दत्तक पुत्र अर्जुन भारत जाते हैं और गंगा के परिवार के साथ रहते हैं। राजीव और गंगा एक दूसरे को अच्छे लगते हैं और दोनों की सगाई कर दी जाती है। गंगा सगाई के बाद राजीव के साथ अमेरिका आ जाती है जहां उसे राजीव का अलग रूप देखने को मिलता है। गंगा राजीव को नशे और अय्याशी में ओत प्रोत पाती है जिसको छुपाने के लिए वह अर्जुन को दोषी मानती है। गंगा और राजीव साथ लॉस वेगस घूमने जाते है, जहां होटल में राजीव उसपे जबरदस्ती करने का प्रयास करता है। गंगा अपने बचाव में राजीव को चोट पहुंचा कर भाग जाती है और फिर अर्जुन के साथ वापस भारत आ जाती है। कुछ प्रकरणों के बाद राजीव की असलियत सबके सामने आ जाती है और अर्जुन और गंगा विवाह करके अमेरिका में सेटल हो जाते हैं।

फिल्म में किशोरीलाल 25 साल से विदेश में रह रहा है, लेकिन उसके संस्कार भारतीय हैं। वह जानता है कि विदेशी लड़कियां भारतीय परंपराओं के अनुसार जीवन नहीं जी सकती, इसलिए वह अपने बेटे राजीव का विवाह भारतीय लड़की से कराना चाहता है। वह कहता है कि - "लेकिन हमारी आने वाली नस्ल, हमारी भारतीय सभ्यता की रक्षा कौन करेगा दीदी?"[13] किशोरी लाल को डर है कि उसकी आने वाली पीढ़ी विदेशी न बन जाए।

यह डर हर प्रवासी भारतीय का होता है , कि कही उसके बच्चे अपनी देश की परंपराओं से दूर न हो जाएं। शुरुआत में ही किशोरीलाल विदेशियों को भारतीय संस्कृति के बारे में बताते हुए कहता है कि- "अमेरिका में प्यार का मतलब है लेन देन... लेकिन हिंदुस्तान में प्यार का मतलब है सिर्फ देना, देना, देना।"[14] किशोरीलाल विदेश में भी गंगा से "आई लव माई इंडिया"[15] गीत गाने को कहता है, और सभी प्रवासी भारतीय साथ में उस गीत को गाते हैं। इस फ़िल्म में अनेकों जगह भारतीय सभ्यता और संस्कृति की झलक मिलती है। यह फिल्म अच्छे और बुरे एन आर आई का भी परिदृश्य सामने लाती है। विदेशों में सफलता के उच्चतम शिखर पर होकर भी एक भारतीय कभी अपनी सभ्यता, संस्कृति और संस्कार नहीं भूलता है।

निष्कर्ष- समय के साथ समाज बदलता जाता है और उसी समाज को दर्शाते हुए सिनेमा में भी परिवर्तन होते जाते हैं। इसी परिप्रेक्ष में हम यह कह सकते हैं कि - "पूरब और पश्चिम में मनोज कुमार का मिशन यह था कि जो विदेश चले गए हैं उन्हें वापस भारत लाया जाए ... परदेस और दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे तक पहुंचते-पंहुचते वो हमारे लिए गर्व के विषय हो गए हैं जो विदेश जाकर बस गए हैं, क्योंकि अब हमें डॉलर की जरूरत है।"[16] सिनेमा का कथानक परिस्थित, परिवेश और समाज के अनुसार बदलते रहते हैं। निष्कर्तः यह कहा जा सकता है कि 'दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे', 'कभी खुशी कभी गम' और 'परदेश' जैसी फिल्मों का विश्लेषण यह दर्शाता है कि प्रवासी भारतीय चाहे सफलता के उच्चतम शिखर पर हों या विदेश में दशकों से बसे हों, वे अपने रीति-रिवाजों, देशभक्ति और सांस्कृतिक पहचान को पूरी निष्ठा के साथ संजोए रखते हैं। सिनेमा ने इन प्रवासियों के बीच एक "आभासी एकजुटता" का बोध कराया है और 'ग्लोबल' को 'लोकल' से जोड़कर उन्हें यह अहसास दिलाया है कि वे दुनिया के किसी भी कोने में हों, उनकी आत्मा सदैव "हिंदुस्तानी" ही रहेगी।

सन्दर्भ सूची-

1. जवरीमल्ल पारख : आजादी के 75 साल और हिंदी सिनेमा, हंस, अगस्त 2022, पृ.112
2. एन. जयराम: द इंडियन डायसपोरा: डाइनैमिक्स ऑफ माइग्रैशन, सेज, नई दिल्ली, 2004, पृ. 15
3. झेंग, सु. 2010. क्लेमिंग डायस्पोरा: म्यूजिक, ट्रांसनैशनलिज़्म, और कल्चरल पॉलिटिक्स इन एशियन/चाइनीज अमेरिका. न्यूयॉर्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. पृ. 11
4. Population of Overseas Indians | Ministry of External Affair https://share.google/s06CwTRVJr9fgiwXD
5. ऐट 18 मिलियन, इंडिया हेज द वर्ल्ड'स लारजेस्ट डायसपोरा पॉपुलैशन. (2021, जनवरी 15). द इकनॉमिक टाइम्स. https://economictimes.indiatimes.com/nri/migrate/at-18-million-india-has-the-worlds-largest-diaspora-population/articleshow/80290768.cms.
6. जवरीमल्ल पारख : आजादी के 75 साल और हिंदी सिनेमा, हंस, अगस्त 2022, पृ.112
7. सिनेमा संवाद, सत्य हिंदी यूट्यूब चैनल. https://www.youtube.com/live/2yAxqv52bJg?si=eytE9w5pNLMugHy4
8. दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे, 1995, निर्देशक - आदित्य चोपड़ा.
9. वही
10. वही
11. कभी खुशी कभी ग़म, 2001, निर्देशक - करण जोहर
12. वही
13. परदेस, 1997, निर्देशक - सुभाष घई
14. वही
15. वही
16. सिनेमा संवाद, सत्य हिंदी यूट्यूब चैनल. https://www.youtube.com/live/2yAxqv52bJg?si=eytE9w5pNLMugHy4

भारतीय ज्ञान परम्परा के विभिन्न दार्शनिक आयाम

डॉ. मीना परस्ते*

सारांश

भारत विश्व की प्राचीनतम् सभ्यताओं में से एक है जिसकी आत्मा उसकी समृद्ध ज्ञान परंपरा में निहित है। यहाँ के दार्शनिक, धार्मिक और सांस्कृतिक ग्रंथों ने मानवता, समानता और भाईचारे का संदेश दिया है। ''वसुधैव कुटुम्बकम'' का विचार भारतीय समाज की आत्मा रही है। भारतीय संस्कृति का आधार उसकी प्राचीन ज्ञान परंपरा है, जिसने सहस्त्राब्दियों से मानव जीवन के विविध आयामों को दिशा प्रादान की है। वेद, उपनिषद, पुराण, महाकाव्य, बौद्ध –जैन ग्रंथ, स्मृतियाँ और संत परंपरा ने न केवल आध्यात्मिक उन्नयन का मार्ग दिखाया बल्कि समाजिक सद्भाव को भी स्थायी आधार दिया भारत की सभ्यता और संस्कृति अपनी प्राचीन एवं समृद्ध ज्ञान परंपरा के लिए विश्वविख्यात है। यहाँ की दार्शनिक दृष्टि धार्मिक सहिष्णुता साहित्यिक समृद्धि तथा आध्यात्मिक धारा ने मानव जीवन को न केवल दिशा प्रदान की बल्कि समाजिक सद्भाव के आदर्श को भी स्थायी रूप से स्थापित किया। भारतीय ज्ञान परंपरा ने यह प्रतिपादित किया कि विविधताओं में ही वास्तविक सद्भाव का अनुभव निहित है। भारतीय ज्ञान परम्परा हजारों वर्ष पुरानी है। इस ज्ञान परम्परा में आधुनिक विज्ञान सहित विभिन्न क्षेत्रों के लिए अदभुत ज्ञान छिपा है, जिसे जान कर मनुष्य अपना जीवन सुलभ बना सकता है। प्राचीन दृष्टिकोण से भारतीय ज्ञान परम्परा का अध्ययन कर हम एक बार फ़िर विश्व गुरु बन सकते हैं। हमें अपनी विचारों एवं क्षमताओं को बढ़ाने की आवश्यकता है। भारतीय ज्ञान परंपराएँ, जिन्हें भारतीय ज्ञान दर्शन भी कहा जाता है, वह ज्ञान, दर्शन, विज्ञान, कला और आध्यात्मिक परंपराओं के विशाल और विविध समूह को संदर्भित करती है, जो प्राचीन काल से ही भारत में विकसित होती आ रही हैं।

मुख्य शब्द: भारतीय ज्ञान परंपरा, सामाजिक सद्भाव, वसुधैव कुटुम्बकम्, समानता, मानवता, सहिष्णुता

भारतीय ज्ञान परंपरा की विशेषताएँ

भारत, संस्कृति और संस्कृत ये तीनो शब्द मात्र शब्द नहीं, अपितु, प्रत्येक भारतीय के भाव है। भारतीय संस्कृति के संरक्षण व संवर्धन के लिए भारतीय ज्ञान परम्परा का ज्ञान परम आवश्यक है। अतएव राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी–2020) में भी बहुभाषावाद को प्रासंगिक बताते हुए शिक्षा क्षेत्र के सभी स्तरों पर संस्कृत को जीवन जीने की मुख्यधारा में शामिल कर अपनाने पर बल दिया गया है। अतः संस्कृत का अध्ययन कर छात्र–छात्राए न केवल अपने–अपने अतीत से गौरवान्वित होकर वर्तमान में संतुलित व्यवहार की ओर अग्रसर होंगे अपितु भविष्य के प्रति भी उल्लासित होंगे।

हमारी प्राचीन शिक्षा प्रणाली ने व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर ध्यान केन्द्रित किया तथा विनम्रता, सच्चाई, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सम्मान जैसे मूल्यों पर बल दिया। भारत में शिक्षा का स्वरूप व्यावहारिकता को प्राप्त करने योग्य और जीवन में सहायक है। इस प्रकार, एनईपी 2020 ने न केवल प्राचीन भारत के गौरवशाली अतीत को मान्यता दी है, बल्कि प्राचीन भारत के विद्वानों जैसे– चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, मैत्रेयी, गार्गी आदि के विचारों एवं कार्यो को वर्तमान पाठ्यक्रम में प्री–स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक शामिल करने की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है।

सम्पूर्ण वैदिक–वांगमय, रामायण महाभारत पुराण, स्मृति ग्रन्थ, दर्शन धर्मग्रन्थ, काव्य नाटक, व्याकरण, तथा ज्योतिष शास्त्र संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध होकर इनकी महिमा को बढ़ाते हैं, जो भारतीय सभ्यता, संस्कृति की रक्षा करने में पूर्णतः सहायक सिद्ध होते हैं। संस्कृत से ही संस्कारवान समाज का निर्माण होता है। संस्कारों से कायिक वाचिक, मानसिक पवित्रता के साथ–साथ पर्यावरण भी स्वच्छ होता है। संस्कारों का वैज्ञानिक महत्त्व भी है। इसकी वैज्ञानिकता को नासा ने 1987 में ही संस्कृत को कम्प्यूटर के लिए सर्वोत्तम भाषा के रूप में मान्यता प्रदान की, जिसका कारण संस्कृत भाषा को अंतरिक्ष में संदेश प्रेषण के लिए सबसे उत्कृष्ट माना है। आज भी अमेरिका, जर्मनी आदि अनेक देश संस्कृत के क्षेत्र में नित–नवीन अनुसंधान कार्य करके इसकी यशोवृद्धि में प्रयत्नशील है।

* अतिथि विद्वान, दर्शनशास्त्र विभाग, शास. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

ईमेल:drmeenaphilosophy121@gmail.com

भारतीय ज्ञान परंपरा जीवन को समग्रता से देखती है, जहाँ भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक और सामाजिक पहलुओं का समन्वय होता है। यह दृष्टिकोण जीवन के हर पहलू को एक दूसरे से जुड़ा हुआ मानता है, और इस प्रकार एक संतुलित और सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने का मार्गदर्शन करता है। उदाहरण के लिए, आयुर्वेद में स्वास्थ्य का अर्थ केवल शारीरिक स्वास्थ्य नहीं, बल्कि मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य भी है। धर्म का अर्थ केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के कर्तव्यों और नैतिक दायित्वों का पालन करने की प्रक्रिया है। धर्मशास्त्रों में वर्णित चार पुरुषार्थ – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – जीवन के विभिन्न पहलुओं का मार्गदर्शन करते हैं। धर्म यहां नैतिकता और कर्तव्यपालन को विशेष महत्व देता है, जो सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में संतुलन बनाए रखने में सहायक है।

भारत के संदर्भ में कहा जाता है – ''प्राचीन भारतीय समृद्धि और सद्भाव के मूल में प्राकृतिक संपदा, कृषि और गोवंश थे। प्राकृतिक संपदा के रूप में हमारे पास नदियों के अक्षय भण्डार के रूप में शुद्ध और पवित्र जल स्त्रोत थे। हिमालय और उष्ण कटिबंधीय वनों में प्राणी और वनस्पति की जैव विविधता वाली जलवायु थी। मसलन मामूली सी कोशिश आजीविका के लायक पौष्टिक खाध सामग्री उपलब्ध करा देती थी। इसीलिए नदियों के किनारे और वनप्रांतरों में मानव सभ्यता और भारतीय संस्कृति विकसित हुई। आहार की उपलब्धता सुलभ हुई तो सृजन और चिंतन के पुरोधा सृष्टि के रहस्यों की तलाश में जुट गए। आर्थिक संसाधनों को समृद्ध बनाने के लिए ऋषि मुनियों ने नए–नए प्रयोग किए।[1]

भारतीय ज्ञान परंपरा सदियों से विविधता में एकता, सहअस्तित्व और सामाजिक सद्भाव का प्रतीक रहा है। उपनिषद,वेद, गीता, बौद्ध, जैन, सूफी और भक्ति परंपरा तक हर विचारधारा ने समाज में शांति, सद्भाव और सह अस्तित्व की महत्ता को प्रतिपादित किया है। यह परंपरा न केवल आध्यात्मिक दृष्टि से बल्कि सामाजिक जीवन के संगठन में भी सामंजस्य का आधार प्रदान करती है। भारतीय संस्कृति का केन्द्रीय भाव सर्वकल्याण है। भारतीय ज्ञान परंपरा गंगा की धारा के समान है, जिसमें भारत की सभी नदियों की जल धारा मिलकर एक हो जाती हैं। उसी प्रकार भारतीय ज्ञान परम्परा भी अनेक होते हुए एक है।[2] अनेकता में एकता ही भारत का सौंदर्य है और उस सौंदर्य को चरितार्थ करना ही भारतीय ज्ञान परम्परा कहलाता है। भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल में रक्षति रक्षितः के भाव अनुस्यूत है। भारतीय ज्ञान परंपरा बहुआयामी और बहुरंगी रही है, जिसमें विभिन्न कालखंडो और समुदायों का योगदान रहा है।

योग और ध्यान के माध्यम से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का विकास होता है, जिससे व्यक्तित्व में संतुलन और आत्म–नियंत्रण आता है। योगसूत्रों में पतंजलि ने अष्टांग योग का वर्णन किया है, जो यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के आठ अंगों पर आधारित है। यह सम्पूर्ण प्रणाली व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास की ओर अग्रसर करती है वेदों और उपनिषदों में वर्णित समाजिक सिद्धांत सामाजिक समरसता और समानता पर बल देते हैं। ऋग्वेद में ष्वसुधैव कुटुम्बकम का सिद्धांत सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार मानता है। यह दृष्टिकोण समाज में विभिन्न जाति, धर्म और पंथ के लोगों के बीच आपसी सद्भाव और सहयोग को बढ़ावा देता है।

महाभारत और रामायण जैसे ग्रंथ न्याय और नैतिकता के आदर्श प्रस्तुत करते हैं, जो समाज में नैतिक मूल्यों का विकास करते हैं। रामायण में राम का जीवन एक आदर्श राजा और व्यक्ति के रूप में न्याय और नैतिकता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। महाभारत में कृष्ण का उपदेश, विशेषकर भगवद्गीता, नैतिकता और कर्तव्यपालन की शिक्षा प्रदान करता है। भारतीय संस्कृति की विविधता को स्वीकार करते हुए, यह परंपरा एकता और भाईचारे का संदेश देती है। विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं, धर्मों और परंपराओं के सहअस्तित्व को प्रोत्साहित करते हुए, भारतीय ज्ञान परंपरा सामाजिक एकता और समरसता की दिशा में कार्य करती है। भारतीय परंपरा में विभिन्न धर्मों और विचारधाराओं के प्रति सहिष्णुता और सम्मान का भाव है, जिससे सामाजिक समरसता में वृद्धि होती है। उदाहरणस्वरूप, उपनिषदों में कहा गया है कि एको सत् विप्रा बहुधा वदन्ति – सत्य एक है, विद्वान उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं। यह धार्मिक सहिष्णुता और विविधता को स्वीकारने की भावना को दर्शाता है। उपनिषद और योग सूत्रों में आत्म–साक्षात्कार और आत्म–ज्ञान पर बल दिया गया है, जिससे व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानता है। उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म की एकता की अवधारणा आत्म–साक्षात्कार के माध्यम से जीवन के उच्चतम सत्य को समझने की दिशा में प्रेरित करती है। धर्मशास्त्र और पुराणों में वर्णित नैतिक कथाएँ व्यक्ति के नैतिक मूल्यों और चारित्रिक गुणों का विकास करती हैं। उदाहरण के लिए, पंचतंत्र और हितोपदेश की कथाएँ नैतिक शिक्षा और व्यावहारिक ज्ञान का संकलन हैं, जो बच्चों और वयस्कों दोनों के लिए महत्वपूर्ण हैं। योग और आयुर्वेद के माध्यम से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का विकास होता है, जिससे व्यक्ति का समग्र व्यक्तित्व सशक्त बनता है। योगाभ्यास न केवल शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार लाता है, बल्कि मानसिक संतुलन और आत्म–नियंत्रण भी प्रदान करता है। आयुर्वेद के अनुसार, आहार, विहार और दिनचर्या का समुचित

पालन व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। भगवद्गीता और अन्य धार्मिक ग्रंथ व्यक्ति को जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण और कर्तव्यपालन की प्रेरणा देते हैं। भगवद्गीता में कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिए गए उपदेश जीवन के विभिन्न संकटों में स्थिरता और कर्तव्यनिष्ठा को बनाए रखने की प्रेरणा देते हैं। यह दृष्टिकोण व्यक्ति को जीवन में आने वाली चुनौतियों का सामना करने और सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा सदियों से विविधता में एकता, सहअस्तित्व और सामाजिक सद्भाव का प्रतीक रहा है। उपनिषद,वेद, गीता, बौद्ध, जैन, सूफी और भक्ति परंपरा तक हर विचारधारा ने समाज में शांति, सद्भाव और सह अस्तित्व की महत्ता को प्रतिपादित किया है। यह परंपरा न केवल आध्यात्मिक दृष्टि से बल्कि सामाजिक जीवन के संगठन में भी सामंजस्य का आधार प्रदान करती है। भारतीय संस्कृति का केन्द्रीय भाव सर्वकल्याण है। भारतीय ज्ञान परंपरा गंगा की धारा के समान है, जिसमें भारत की सभी नदियों की जल धारा मिलकर एक हो जाती हैं। उसी प्रकार भारतीय ज्ञान परम्परा भी अनेक होते हुए एक है।[3] अनेकता में एकता ही भारत का सौंदर्य है और उस सौंदर्य को चरितार्थ करना ही भारतीय ज्ञान परम्परा कहलाता है। भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल में रक्षति रक्षितः के भाव अनुस्यूत है। भारतीय ज्ञान परंपरा बहुआयामी और बहुरंगी रही है, जिसमें विभिन्न कालखंडो और समुदायों का योगदान रहा है।

भारतीय ज्ञान परंपरा ने समाज को जोड़ने के लिए कई महत्वपूर्ण आयाम दिए है। सभी धर्मों के सत्य को स्वीकार करने की उदारता दी है, जिससे धार्मिक विविधताओं के बावजूद एकता कायम है भारतीय ज्ञान परंपरा ने न केवल विचारों के स्तर पर बल्कि व्यवहारिक जीवन में भी सद्भाव की स्थापना की है। समय–समय पर संतों, दार्शनिकों और सुधारकों ने अंधविश्वास, छुआछूत और अन्य सामाजिक विकृतियों को हटाकर सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा दिया है। सामाजिक सद्भाव एक ऐसा विषय है जिसकी उपादेयता प्राचीनकाल से मानी जाती रही है। प्राचीन साहित्यों में इसका बहुतायत मात्रा में विवेचन किया गया है। वेद उपनिषद से लेकर आधुनिक साहित्य पर्यान्त प्रायः सभी प्रकार के ग्रंथों में इसको पर्याप्त स्थान मिला है। सद्भाव एक ऐसा सिद्धान्त है जो सार्वभौमिक होने के साथ–साथ सामाजिक जीवन की धुरी है। समाज की संकल्पना का अस्तित्व ही सद्भाव के सिद्धांत पर ही टिका होता है।[4] सद्भाव की वास्तविक स्थिति ही किसी समाज की दिशा या दशा तय करती है। जिस किसी समाज में इस सिद्धांत का अनुपालन जितने सुनियोजित और पारदर्शी तरीके से होता है वह समाज उतना ही अधिक उन्नत और सुव्यवस्थित होता चला जाता है। सभी समाज का मौलिक स्वरूप प्रायः समान्य ही रहता है। परन्तु यदा–कदा देश–काल और परिस्थिति के अनुसार उनमें किञ्चित परिवर्तन की भी सम्भावना निहित रहती है। प्रत्येक समाज का अपना एक सर्वसम्मत उपास्य देव होता है जीवन यापन की एक विशेष पद्धति होती है जो विविध नियम और अनुशासनों में उपनिबद्ध रहती है। कालान्तर में यही सिद्धान्त रीति अथवा परम्परा की संज्ञा को धारण कर लेती हैं। समय के साथ इनमें कुछ नुतन मान्यताएँ जुड़ती जाती हैं और उस समाज का स्वरूप विस्तृत होता चला जाता है।

भारतीय समाज विभिन्न विविधताओं से युक्त है। विभिन्नताओं में सामंजस्य बिठाना किसी भी समाज के लिए अति महत्वपूर्ण होता है। विविधताओं में सामंजस्य अथवा विविधता में एकता भारतीय समाज की सबसे बड़ी विशेषता है। भारतीय समाज विविध वर्णों, विविध धर्मों, विभिन्न जातियों, उपजातियों, अनेक भाषाओं, विविध सभ्यता एवं संस्कृति से युक्त है। यहाँ की भौगोलिक संरचना भी भिन्न–भिन्न है। भाषा, धर्म, जाति, वर्ण, संस्कृति, भौगोलिक स्थिति इत्यादि में विभिन्नता होने पर भी उसमें एकता की भावना भारतीय समाज में पदे–पदे परिलक्षित होता है। भारतीय समाज में अनेक धर्म, जाति, सम्प्रदाय, पन्थ के लोग मिल–जुलकर राष्ट्र की उन्नति में अवदान करते हैं।[5] भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पूरे विश्व में उन्नत है। भारत एक बहुभाषा एवं बहु संस्कृति वाला देश है। यहाँ पर अनेक धर्म, वर्ण, जाति, बहुविध सभ्यता एवं विविध नस्ल के लोग विभिन्न भूभागों में निवास करते हैं। अतः भारतीय समाज का परिगणन विश्व के जटिलतम् समाजों में किया जाता है। किन्तु अनेक भाषा, बहुविध सभ्यता एवं संस्कृति वाले इस देश की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ का समाज अनेकता में एकता तथा विभिन्नता में समानता लिए हुए है। भाषा, धर्म, जाति इत्यादि में भिन्न्ता होने पर भी यहाँ का समाज सामंजस्य का सर्वोतम निदर्शन है और पारिवारिक ढांचा का उत्कृष्ट उदाहरण है। भाईचारा एवं आपसी मेल–जोल की जैसी भावना यहाँ दिखलाई पड़ती है, वैसा अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। समस्त विश्व को अपना कुटुम्ब समझना भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है वसुधैव कुटुम्बकम् – वसुधैव कुटुम्बकम् का अर्थ है – सम्पूर्ण पृथ्वी के प्राणीमात्र एक ही परिवार का हिस्सा होने की उदात भावना। आदि काल से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। शांति एवं साहिष्णुता सनातन संस्कृति के प्रमुख आदर्श रहे हैं। इन्हीं आदर्श परम्पराओं की झलक हमें वैदिक सभ्यता में देखने को मिलती हैं। वैदिक काल में प्रत्येक व्यक्ति इस भावना से व्यवहार करता था– 'सर्वे भवन्तु, सुखिनः' जैसे अनेक मंत्र वैदिक साहित्य में पढ़ने को मिलते हैं। उस समय लोग इसके अनुरूप व्यवहार भी

करते थे मानव ही नहीं बल्कि इस धरती के प्राणी के प्रति दया भाव रखना यहाँ के सामान्य जन की विशेषता रही है। समाज के सभी व्यक्ति सद्भाव, समृद्धि एवं सुखपूर्वक जीवन–यापन कर सके इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर शास्त्र और संहिताएँ बनी जो हमारे सनातन धरोहर हैं।[6]

भारतीय ज्ञान परम्परा में दर्शन

भारतीय ज्ञान परंपरा का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व अत्यंत गहरा और विस्तृत है। यह परंपरा न केवल समाज के समग्र विकास को प्रभावित करती है, बल्कि व्यक्तिगत विकास और व्यक्तित्व निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारतीय ज्ञान परंपरा में वेद, उपनिषद, महाभारत, रामायण, पुराण, योग, आयुर्वेद और विभिन्न दार्शनिक और धार्मिक ग्रंथ शामिल हैं, जो भारतीय समाज और व्यक्तित्व विकास के विभिन्न आयामों को दर्शाते हैं। इस शोध पत्र में हम इन परंपराओं के समाज और व्यक्तित्व विकास में योगदान का विस्तृत विश्लेषण करेंगे। भारतीय ज्ञान परम्परा में वेद, वैदिक साहित्य, उपनिषद, रामायण, महाभारत, गीता, पुराण और धर्म शास्त्रों का विशेष महत्व है, जो ज्ञान, विज्ञान, कर्म, उपासना, अध्यात्म तथा योग आदि समस्त विषयों का मूल स्रोत है। भारतीय ज्ञान परम्परा वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक चिंतन पर आधारित विषय है, जो विश्व बंधुत्व की भावना से ओतप्रोत है तथा जिसमे विश्व के समस्त समुदायों एवं प्राणीमात्र के लिए कल्याण की भावना निहित है। भारतीय ज्ञान परम्परा आज भी उतना ही प्रासंगिक है।

भारत ने विश्व को ज्ञान पद्धति के माध्यम से विज्ञान के क्षेत्र में विभिन्न दृष्टिकोण दिए। भारतीय ज्ञान पद्धति के विषय में और अधिक चिंतन करने की आवश्यकता है। आज अंग्रेजी शिक्षा के विस्तार के कारण कुछ लोग इस पद्धति को जान नही पाते हैं, जिसके कारण वह इसकी श्रेष्ठता एवं इसकी प्रमाणिकता से अनुभवहीन रह जाते हैं, इसलिए इसकी उपादेयता को जनमानस तक पहुँचने की आवश्यकता है, क्योंकि यह मात्र पुरातन ज्ञान का ही विषय नहीं है, बल्कि यह बुद्धि, आर्थिक सुरक्षा एवं राष्ट्रीय गौरव का भी विषय है।

आधुनिक युग में डिप्रेशन, स्ट्रेस, इंजाइटी व मेंटल ट्रॉमा जैसे शब्दों का प्रयोग अत्याधिक मात्रा में बढ़ गया हैं, आज की युवा पीढ़ी पाश्चात्य जगत की जीवनशैली को अपनाने के कारण इन शब्दों को भी अपने जीवन में समाहित कर चुकी हैं। परंतु भारतीय दर्शन ज्ञान परम्परा अर्थात् पुरातन भारत में इस प्रकार की मनोवृत्ति देखने को नहीं मिलती थी। अद्वैत ज्ञान परम्परा में कहा गया है – "यह संपूर्ण जगत ब्रह्म की ही प्रतिकृति है। एक मात्र चेतन, नित्य और मूल सत्ता जो अखंड, अनंत, अनादि, निर्गुण और सत चित् तथा आनंद से युक्त है। प्रत्येक तत्त्व और प्रत्येक वस्तु के कण–कण में ब्रह्म की व्याप्ति मानी जाती है, और कहा जाता है कि अंत या नाश होने पर सबका इसी ब्रह्म में लय होता है।"

भारतीय ज्ञान परम्परा में संस्कृत

संपूर्ण भारतीय ज्ञान पद्धति ऐसे अनंत सत्य से पूर्ण है, जो पूर्णमद पूर्णमिदं की बात करती हैं। यह वह पद्धति हैं जिसका अस्तित्व यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ है। भारतवर्ष की भूमि ने हीं विश्व को देव भाषा संस्कृत दी जो कि विश्व की सबसे शुद्धतम एवं उपयुक्त भाषा है। संस्कृत सभी यूरोपीय भाषाओं की जननी है। कंप्यूटर सॉफ्टवेयर के लिए संस्कृत सबसे उपयुक्त भाषा है[7]

संस्कृत भाषा कि उपयोगिता को सिद्ध करने कि आवश्यकता भी नहीं है, आज संपूर्ण विश्व में इसकी उपादेयता जानने के लिए शोध एवं अनुसंधान किए जा रहे है। भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन को मार्गदर्शन दिया कि ज्ञान आत्म–शुद्धि और मुक्ति का सबसे बड़ा साधन है।[8] श्रीमद्भगवद्गीता प्राचीन काल से ही भारतीय ज्ञान पद्धतियों में भारतीय संस्कृति, दर्शन एवं आध्यात्मिकता की महत्ता रही है। भारतीय दर्शन की ज्ञान प्रणालियाँ जो आधुनिक काल में भी महत्त्वपूर्ण है। भारतवर्ष ने विश्व को योग एवं आयुर्वेद दिया।

भारतीय ज्ञान परम्परा में आयुर्वेद

आयुर्वेद मनुष्यों के ज्ञात चिकित्सा का परम विद्यालय है। चिकित्सा के जनक आचार्य चरक ने 2500 साल पहले आयुर्वेद की पद्धति बताई, आज आयुर्वेद का विस्तार और भी अधिक हो रहा है। आधुनिक युग में आयुर्वेद का प्रत्यक्ष उदाहरण हमने कोरोना महामारी में देखा। आयुर्वेद के नाम से ज्ञात पारंपरिक भारतीय चिकित्सा पद्धति मानव कल्याण के लिए अति महत्त्वपूर्ण माना गया है। वर्तमान समय में जहां विश्व में विभिन्न स्थानों पर जीवन–संबंधी विकट परिस्थितियां देखने को मिल रही है, वहां प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति एवं आयुर्वेद एव समाधानात्मक उपाय है। प्राचीन चिकित्सा पद्धति सुदृढ़ थी, जहाँ हम यह देख सकते हैं कि सुश्रुत शल्य चिकित्सा के जनक थे उन्होंने 2600 वर्ष पूर्व ही स्वास्थ्य वैज्ञानिकों पद्धति जैसे – सिजेरियन, मोतियाबिंद, कृत्रिम अंग, फ्रैक्चर, मूत्र पथरी, प्लास्टिक सर्जरी, मस्तिष्क की सर्जरी आदि, जैसी जटिल सर्जरी बताया। आयुर्वेद का प्रयोजन ही इस प्रकार बताया गया है – "प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वाथ्यरक्षण मतुरस्य विकार प्रशमनं।"[9] महर्षि सुश्रुत ने भी कहा है यहां आयुर्वेद का प्रयोजन व्याधि से पीड़ित मनुष्यों को व्याधि से मुक्त करना एवं स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना है। "इह खल्वायुर्वेद प्रयोजनं व्याध्युयसृष्टानां। व्याधि परिमोक्षः स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणं

चा।।"[10] जिस शास्त्र के द्वारा रोगों का निदान किया जाता है तथा उसके उपचार का विवेचन किया जाता है, आयुर्वेद कहलाता है। इस तथ्य से यह ज्ञात होता है कि आयुर्वेद का प्रथम प्रयोजन व्यक्ति के स्वास्थ्य का संरक्षण करना होता है अर्थात् वे स्वस्थ रहें एवं किसी प्रकार के रोग से ग्रस्त नहीं हो पाएं, इसलिए आयुर्वेद में स्वस्थवृत्त (दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या) एवं सद्वृत्त का विवेचन किया गया है। भारतीय दर्शन एवं योग में 'पुरुषार्थ' को मानव जीवन का लक्ष्य माना गया है, आयुर्वेदिक ग्रंथ चरक सूत्र में भी कहा गया है– 'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम।'[11] चरक सूत्र – 1/15 , आयुर्वेद का निर्माण भी धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के लिए ही किया गया है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में योग

योग एक प्राचीन पद्धति है जिसका विकास भारत में हुआ है। योग को अब भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में स्वस्थ जीवन शैली के रूप स्वीकार की जा रही है। योग एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से हमें दीर्घजीवी होने के साथ–साथ रोग–रहित रहने की शक्ति प्राप्त होती है। योग के माध्यम से हमारा शरीर प्रतिकूल वातावरण में भी सुरक्षित रहता है, तन–मन स्वस्थ एवं शुद्ध होते हैं। योग शब्द 'युज' धातु से बना है जिसका सामान्य अर्थ होता है जुड़ना। अर्थात् किसी दो चीजों का परस्पर मेल अथवा संबंध 'योग' कहलाता है। शरीर का मन से, मन का आत्मा से मिलन योग कहलाता है। प्राचीन काल में योग को आत्मा का परमात्मा से मिलन माना जाता था। प्राचीन साहित्य में 'युज' 'युज्जते' 'युज्जान' 'योगो–योगो' आदि के उदाहरण मिलते हैं जिनका अर्थ मन को योजित करना एवं जोड़ने आदि।[12] यजुर्वेद 11.1.5, योग की परिभाषा महर्षि पतंजलि ने इस प्रकार दी है – "योगचित्तवृत्ति निरोध। अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।"[13] योग के द्वारा व्यक्ति अपने आंतरिक शक्ति को पहचान कर मन एवं शरीर को जोड़ पाता है। कभी–कभी ऐसा होता है कि व्यक्ति जो कार्य करते हैं, उस कार्य में उनका मन नहीं लगता। उनका मन एकाग्र नहीं होता और मन में एकाग्रता न हो तो किसी भी कार्य में पूर्णरूपेण सफल होना कठिन हो जाता है। योग साधना के द्वारा मन की एकाग्रता को विकसित किया जा सकता है। गीता में कहा गया है – "योगःकर्मसु कौशलम"[14] अर्थात् कर्मों में कुशलता ही योग है। एकाग्र मन से कुशलतापूर्वक किया गया कार्य सफल होता है एवं योग के द्वारा ही मन का एकाग्रता संभव है। योग के अंतर्गत आसनों का महत्त्व प्रत्येक यौगिक ग्रंथ में मिलता है। कोरोनाकाल में भी विभिन्न प्रकार के योग–चिकित्सा बताया गया है, जिनमें योगासन, प्राणायाम एवं ध्यन महत्त्वपूर्ण हैं। महर्षि पतंजलि ने आसनों में संदर्भ में कहा है– स्थिरसुखमासनम[15] अर्थात् स्थिर से सुख–पूर्वक किया हुआ अभ्यास आसन है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में पर्यावरण

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही ऋषि परम्परा चली आ रही है। भारतीय ज्ञान परम्परा प्राचीन संस्कृति है एवं यह अनंत काल से चली आ रही है। ऋग्वेद में कहा गया है– 'भद्रं इच्छन्ति ऋषयः'। ऋषियों का जीवन लोक कल्याण हेतु होता है। मनसा – वाचा – कर्मणा से वे लोक कल्याण के प्रति समर्पित होते हैं। हम सब इस पृथ्वी पर रहते हैं। प्रकृति अथवा पर्यावरण से वायु, जल एवं आश्रय आदि हम जितना चाहे प्राप्त कर सकते हैं। अथर्ववेद में पृथ्वी सूक्त के अंतर्गत कहा गया है – 'माता भूमि पुत्रहं पृथिव्या।' अर्थात् धरती हमारी माता है एवं हम सभी इनके संतान हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा से चली आ रही पृथ्वी एवं प्राकृतिक पूजन का महत्व को जान कर हम हमारी प्रकृति को स्वस्थ एवं सुरक्षित रख सकते हैं। पर्यावरण स्वस्थ होगा तब ही हम सभी हमारे जीवन में स्वस्थ एवं सुरक्षित रहेंगे। भारतीय हिंदू धर्म को विज्ञान पर आधारित माना जाता है। इसके प्रयेक परम्परा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पाया गया है। वैज्ञानिक नियमों द्वारा प्रतिपादित ज्ञान को ही शाश्वत ज्ञान का आधार माना जाता है। हिंदू धर्म की नींव वैज्ञानिकता पर आधारित है, इसलिए इसे सनातन धर्म भी कहा जाता है। हमारी संस्कृति का आधार हमारा धर्म है। धर्म वह है जिसे हम धारण करते हैं, जो शाश्वत है एवं सभी के लिए कल्याणकारी है, इस संदर्भ में भारतीय दर्शन परम्परा में गायत्री मंत्र, मंत्रोच्चारण, हवन, नदी पूजन, पीपल वृक्ष की पूजा एवं सबसे महत्वपूर्ण योग एवं प्राणायाम की विशेष रूप से चर्चा की गई है।

भारतीय ज्ञान परम्परा ने "वसुधैव कुटुंबकम" के विचार से सभी प्राणियों की परस्पर निर्भरता पर जोर दिया। पर्यावरणीय विषय और प्राकृतिक संसाधन संरक्षण और संरक्षण के सिद्धांत अत्यधिक महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं।

भारतीय ज्ञान परम्परा में गणित

गणित में भारतवर्ष का परचम पुरातन काल से ही लहरा रहा है। "पाई" के मान की गणना सबसे पहले बुधायन ने की थी, और उन्होंने उस अवधारणा को भी समझाया जिसे पाइथागोरस प्रमेय के रूप में जाना जाता है। इसकी खोज उन्होंने यूरोपीय गणितज्ञों से बहुत पहले छठी शताब्दी में की थी। स्थान मान पद्धति, दशमलव पद्धति भारत में 100 ईसा पूर्व में विकसित की गई थी। वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन ने कहा है – "हम भारतीयों के बहुत ऋणी हैं, जिन्होंने हमें गिनना सिखाया, जिसके बिना कोई सार्थक वैज्ञानिक खोज नहीं हो सकती थी।"

(We owe a lot to Indian who taught us how to count without which no worthwhile scientific Discovery could have been done.)

पाश्चात जगत के वैज्ञानिक के कथन से यह स्पष्ट होता है कि भारतवर्ष का योगदान सदैव ही अमूल्य रहा है और आधुनिक सन्दर्भ में इसकी उपादेयता सदैव अक्षुण्ण रहेगी।

भारतीय ज्ञान परम्परा में गुरु–शिष्य

गुरु शिष्य परम्परा सबसे प्राचीन रही है और इसे सर्वोत्तम व्यवस्था भी कहा जाता है। वेद काल से ही विभिन्न प्रकार की शिक्षा गुरु द्वारा मौखिक रूप से दी जाती रही है जिसे गुरु–मुख कहा जाता है। गुरुकुल में शिष्य गुरु की सेवा करना, साथ ही कठोर अनुशासन में रहना, संयमित जीवन शैली व्यतीत करना तथा गुरु द्वारा शिष्य को जो भी शिक्षा दी गई हो उसका निरंतर अभ्यास करना तथा श्रद्धा से सीखता था। शिक्षा और ज्ञान के प्रसार में गुरु–शिष्य परंपरा की महत्वपूर्ण भूमिका है, जो अनुशासन और नैतिक मूल्यों का विकास करती है। गुरुकुल प्रणाली में शिष्य अपने गुरु के सान्निध्य में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे, जो केवल अकादमिक ज्ञान तक सीमित नहीं होती थी, बल्कि जीवन के विभिन्न पहलुओं में नैतिक और अनुशासित जीवन जीने की कला भी सिखाई जाती थी। इस प्रकार हमारे भारत वर्ष ने विश्व को अनेक प्रकार से योगदान देकर लाभान्वित किया है। भारत ने ही विश्व को बौद्ध, जैन और सिख पंथ दिए। भारत ने विश्व को गुरु शिष्य परम्परा दी जिसके माध्यम से वर्षों तक अर्जित ज्ञान को आत्मसात और विश्लेषण कर नए ज्ञान को संश्लेषित किया गया।

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परंपरा समाज और व्यक्तित्व दोनों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह परंपरा समग्रता, नैतिकता, सहिष्णुता और आत्म–ज्ञान पर आधारित है, जो समाज को एकता और समरसता की ओर अग्रसर करती है और व्यक्तित्व को सशक्त और संतुलित बनाती है। आज के वैश्विक और व्यस्त समाज में, भारतीय ज्ञान परंपरा के सिद्धांतों का अनुकरण समाज और व्यक्तियों के समग्र विकास के लिए अत्यंत उपयोगी हो सकता है। भारतीय ज्ञान परंपरा केवल प्राचीन भारतीय समाज के लिए ही प्रासंगिक नहीं है, बल्कि यह आज के आधुनिक समाज और व्यक्तियों के लिए भी मार्गदर्शक सिद्धांत प्रदान करती है। इसके सिद्धांतों का अनुपालन समाज में समरसता, न्याय, और नैतिकता के विकास में सहायक हो सकता है, जिससे समाज और व्यक्तित्व दोनों का सर्वांगीण विकास संभव हो सके। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परंपरा का अध्ययन और उसके सिद्धांतों का अनुपालन एक सशक्त और समरस समाज के निर्माण में अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिससे व्यक्ति और समाज दोनों का विकास हो सके। आधुनिक युग में व्यक्ति भौतिकवादी विलासिता की ओर अग्रसर हो चुके है जिसके कारण शारीरिक श्रम बहुत कम हो गया है। मशीनों पर आश्रित होने के कारण लोगों के जीवन में आलस्य की वृद्धि हो चुकी है, परिणामतः इसका असर उनके शरीर एवं मन पर पड़ता है। निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान पद्धति को अपना कर जीवन सुखी बनाया जा सकता है। भारत के द्वारा विश्व को दिए गए ज्ञान संस्कृति तथा दर्शन को जानना तथा उसे जनमानस तक पहुँचाना ही एकमात्र उपाय है, तब ही इसकी उपादेयता सिद्ध होगी। अब यह हम सभी का कर्त्तव्य बनता है कि भारत वर्ष की इस अनमोल धरोहर, ज्ञान को संवर्धित करें जिससे विश्व का कल्याण हो सके एवं भावी पीढ़ी भारत को हीन दृष्टि से न देख कर गौरवपूर्ण दृष्टि से देखे।

सन्दर्भः

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020https://www.education.gov.in/sites/uploadfiles/mhrd/files/nep update/NEP final HI.OPdf
2. कुमार, एम0जे0 (2024), फॉरेन कनेक्शन्स इंटीग्रेशन इंडियन नॉलेज सिस्टम इन हायर एजुकेशन, आईईटीई टेक्निकल रिव्यु 41 (3), 271–273https://www.tandfonline.com/doi/pdf/02564602.2024.2342625/10.1080
3. भारतीय ज्ञान परंपरा विविध आयाम, यादव नीलम, कुमार आशुतोष, रानी वर्षा, इंशा पब्लिकेशन्स दिल्ली 2023
4. धर्मों रक्षति, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पृष्ठ संख्या–349, प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली, संस्करण –1981
5. वही
6. भारतीय ज्ञान परंपरा और विचारक, शुक्ल रजनीश कुमार प्रभात प्रकाशन प्रथम संस्करण 2023
7. श्रीमद्भगवद्गीता– 4/33, 37–38
8. वही
9. चरक संहिता सूत्र स्थान– 30/26
10. वही
11. चरक संहिता सूत्र स्थान– 30/26, सुश्रुत संहिता– ।/12
12. यजुर्वेद 11.1.5
13. योग–सूत्र 1/2
14. गीता– 2/50
15. योग–सूत्र 1/2

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री पात्रों की भूमिका

चेतना सिंह*
डॉ. मधु पाठक**

सारांश

स्त्री को केवल त्यागमूर्ति के रूप में नहीं, बल्कि इच्छाओं और स्वत्व वाली व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। इन स्त्रियों के माध्यम से उन्होंने विवाह संस्था, सामाजिक मर्यादा और स्त्री शरीर पर नियंत्रण जैसे मुद्दे पर खुल कर बात की है। स्त्री की आत्म स्वीकृति और विद्रोही चेतना स्पष्ट दिखाई देती है। इन स्त्रियों के माध्यम से शहरी मध्यवर्गीय जीवन की जटिलताओं को भी चित्रित किया है। कहीं पारिवारिक संबंधों में बदलते मूल्य के रूप में, कहीं आधुनिकता और परंपरा के बीच द्वंद्व, तो कहीं सामाजिक प्रतिष्ठा और नैतिक द्वंद्व के रूप में।

बीज शब्द : समाज पृष्ठभूमि, पात्रों की चेतना, संघर्ष और जीवन, पंजाब–हरियाणा क्षेत्र, ग्रामीण जीवन, सामुदायिक जीवन, लोक परंपराएं, पारिवारिक सम्बन्ध।

कोई भी कथाकार जब रचना गढ़ता है तो वह शब्दों के सहारे कभी काल्पनिक तो कभी यथार्थ सृष्टि का निर्माण करता है। उस सृष्टि में कुछ मूर्तियाँ गढ़ता है और फिर उन मूर्तियों को अपने विचारों के अनुरूप नाम देता है। यह नाम नर और नारी के रूप में दो भागों में बँटा होता है। उद्धरण चिन्हों में उनकी आपस में बात या संवाद करा कर जीता जागता प्राणी करा देता है। इन्हीं शब्द मूर्तियों को कथा साहित्य में पात्र कहा जाता है।

कथाकार जब पात्रों की संरचना करता है तो वह चरित्र के अन्तर का कोना–कोना छान मारता है। कभी–कभी तो कथाकार पात्रों में इतनी गहराई से जुड़ जाता है। कि अंतर करना मुश्किल हो जाता है कि यह कथा पात्र की है या कथाकार के स्वयं की। कृष्णा सोबती के पात्रों में यह देखा जा सकता है।

कथा साहित्य में सामाजिक परिवेश का अत्यंत जीवंत, यथार्थपूर्ण और बहुआयामी चित्रण मिलता है। वे समाज को केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं, बल्कि पात्रों की चेतना, संघर्ष और जीवन दृष्टि को गढ़ने वाली सक्रिय शक्ति के रूप में प्रस्तुत करती हैं। उनके कथा साहित्य में पंजाब–हरियाणा क्षेत्र का ग्रामीण जीवन सजीव रूप में उपस्थित होता है। सामुदायिक जीवन, लोक परंपराएं और पारिवारिक संबंधों की गहराई तो दिखती है साथ ही कृषि आधारित जीवन, सामूहिक श्रम और जातिगत संरचना का चित्रण मिलता है। इन रचनाओं में स्त्री की सहनशीलता और जीवन शक्ति प्रमुख रूप से उभरती है। उनकी कहानियाँ स्त्री के सामाजिक स्थान पर गहरी टिप्पणी करती है।

पात्रों के संदर्भ में अनेक विद्वानों के मत भिन्न–भिन्न है। किन्तु डॉ0 सूतदेव हंस का मत कृष्णा सोबती के पात्रों से मिलता है। उन्होंने नारी पात्रों का बहिरंग आधार के अंतरंग दृष्टि से वर्गीकरण किया है। कृष्णा जी की स्त्री पात्रों को बहिरंग आधार के अन्तर्गत अंतरंग दृष्टि से वर्गीकृत है। कृष्णा सोबती के कथा साहित्य के स्त्रियों का चित्रण बहुआयामी है। हम इन कथाओं के माध्यम से स्त्री पात्र को निम्न रूपों को देख सकते हैं–

आत्मनिर्भरता :–

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री पात्र केवल सहानुभूति की पात्र नही है, बल्कि वे आत्मनिर्भरता, स्वाभिमान और स्वत्व बोध की सशक्त प्रतीक है। आपके लेखन में स्त्री अपने निर्णय स्वयं लेनेवाली, सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देने वाली और आत्मसम्मान की रक्षा करनेवाली वयक्तित्व के रूप में उभरती है। स्वतंत्र व्यक्तित्व और आत्मसम्मान से भरी यह स्त्रियाँ पुरुष निर्भर जीवन को स्वीकार नहीं करतीं।

---

* शोधार्थिनी, हिन्दी–विभाग, राजा श्रीकृष्ण दत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सम्बद्ध : वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ0प्र0।

** शोध निर्देशिका, सहायक प्राध्यापक, हिन्दी–विभाग, राजा श्रीकृष्ण दत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सम्बद्ध : वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ0प्र0।

ये अपने अस्तित्व को पहचानती है और अपनी गरिमा बनाए रखने के लिए संघर्ष करती हैं।

'समय–सरगम' की आरण्या कृष्णा सोबती के सभी स्त्री पात्रों में सबसे सशक्त मानी जाती है। आरण्या अंतिम दौर से गुजर रही है लेकिन जीवन जीने का उत्साह उसमें भरपूर है। वह अपने जीवन को अपने तरीके से जीना चाहती है। एक–एक पल को, अनुभव को समेटना चाहती है। वह कहती है– ''आगे बढ़कर क्षण को पकड़ लो जो तुम्हारा है। यह शाम, यह क्षण, यह बारिश लपक कर हथेली में समेट लो। एक बार चुकी तो हमेशा के लिए खिसक जायेगी।''[1] आरण्या एक ऐसी जिंदादिल, आत्मनिर्भर स्त्री है, जो अपने अस्तित्व के प्रति सजग है। मृत्यु का उसे भय नही है वह जीना चाहती है। इसी आत्मविश्वास की नींव पर खड़ी जिन्दगी को नए सिरे से देखती।

'मित्रों मरजानी' की मित्रों अपनी इच्छाओं और भावनाओं को दबाती नही है। वैवाहिक जीवन में अपनी असंतुष्टि खुलकर व्यक्त करती है। वह सामाजिक वर्जनाओं से भयभीत नही होती। ''मित्रो अपने बूते पर घूरती है, लड़ती है, मसखरी करती है, टक्कर लेती है, सीनाजोरी भी और एक फुंकारती घड़ी में अपनी माँ की संज्ञा को अलगनी पर टंगते देख स्वयं ही फरफराते–उफनते कपड़ों को सहेज समेट पर ले सिरे से अपने साथ आ लगती है। अपने को ढूंढ लेती है। एक परिवार। अपने में संपूर्ण संसार। पर कोई भी संसार अपने होने से ही अपने होने में ही कब संपूर्ण है। मित्रों ही क्यों, वे सब उस दहक–महक से जुड़े–बंधे हैं जो हाड़–मांस के कपड़ों में धड़कते–फड़कते हैं, उसी से उगते–उपजते हैं।''[2]

सोबती की स्त्री पात्र पारिवारिक और सामाजिक ढाँचों में रहते हुए भी स्वयं निर्णय लेने की क्षमता रखती है। 'जिन्दगीनामा' की ग्रामीण स्त्रियाँ घरेलू और कृषि कार्यों में सक्रिय भूमिका निभाती है। परिवार की आर्थिक संरचना में सहभागी होती है। महरी चाची का चरित्र आत्म–निर्भर है। वह अपना निर्णय स्वयं लेती है। उसे सामाजिक व मानवीय मूल्यों की पहचान है, उसने जो घर छोड़ा, उसके बारे में भी सोचती है। महरी चाची एक ब्राह्मणी होने के बावजूद मुसलमानों से प्रेम करती है। महरी चाची और गणपत शाह के प्रेम संबंध को पूरा गाँव जानता है। इसी मामले में वह गुजरात कचहरी में बुलाये जाते हैं जहाँ वह बेबाकी से अपना पक्ष रखती है– ''साहब जी मुझे बेवा हुए तिनसाल हुए अदालत समझे कि मैं खेल गुड़िडयाँ और न मैं सोलावें साल। मैं बालिग हूँ, अक्ल होश ठिकाने है। अपना भला–बुरा समझती हूँ। अपनी मर्जी से सरदारों की दहलीज लांघ आई हूँ।''[3] यह स्त्री की सामाजिक उपयोगिता और आत्मनिर्भरता को रेखांकित करता है।

'ऐ लड़की' की अम्मू अपनी बेटी के भविष्य के लिए चिंतित है किन्तु बेटी आत्म विश्वास से भरी है। वह अपने आत्म सम्मान को बनाये हुए है। उसका है कि सबसे पहले किसी भी स्त्री को आत्मनिर्भर होना सबसे जरूरी है। बाद में विवाह, परिवार आदि आ जाते हैं। वह स्त्री मुक्ति की पक्षधर हैं, उसका समर्थन करती हैं।''[4]

देह एवं यौन स्वतन्त्रता :–

कृष्णा सोबती की स्त्री पात्र देह और मन पर स्वयं के अधिकार की बात करती है। ये स्त्रियाँ स्वयं की देह को लज्जा या पाप के रूप में नहीं, बल्कि उसकी स्वायत्तता के रूप को स्वीकार करती है। 'मित्रो मरजानी' की मित्रो अपनी यौनिकता पर खुलकर बात करती है। दाम्पत्य में संतुष्टि को अपना अधिकार मानती है। काम अतृप्ति को खुलकर स्वीकार करती हुई कहती है– ''पति उसका रोग नहीं पहचानता बहुत हुवा हफ्ते परवारे... और मेरी इस देह में इतनी प्यास है कि मछली सी तड़पती है।''[5] उपन्यास की नायिका मित्रो समाज को न सिर्फ चुनौती देती है बल्कि पूरे धैर्य के साथ अपनी बात को उजागर करती है। मित्रो मरजानी की दूसरी स्त्री पात्र बीबो है जो स्वच्छन्द और स्वतन्त्र यौनाचार में लिप्त है। जिसमें न ममत्व है न स्त्री गुण। वह स्वयं कहती है– ''एक नही बालो ने सौ–सौ मर्द नचाए अपने इशारों पर, बस एक खसम का सुख न बढ़ा इस अभागी के भाग में।''[6]

'सूरजमुखी अंधेरे के' की स्त्री अनचाहे पुरुषों के सम्पर्क में आती है।इस उपन्यास में स्त्री के माध्यम से कृष्णा सोबती जी ने यौन एवं संभोग का खुलकर चित्रण किया है। स्त्री कई पुरुषों के साथ यौन संबंध बनाती है किन्तु किसी से भी तृप्त नहीं हो पाती। अंत में वह दिवाकर के साथ भोगे हुए शारीरिक सुख से तृप्त होती है। वह कहती है– ''पहले कभी नहीं। तुमने मेरा शाप धो दिया है दिवाकर।''[7] 'यारों के यार' कहानी संग्रह की 'तमन्ना' स्वच्छ यौन संबंध बनतीा है। इसका उसे कोई पश्चाताप नहीं। सन् 1968 में लिखी यह कहानी स्त्री के देह की बात करती है। स्त्री देह की स्वतन्त्रता, उससे लाभ उठाने की शोख अदाओं से अफसरों को लुभाने की बात करती है। तमाशा और तमन्ना जैसी स्त्रियाँ आज आम हो गई हैं। हमारी भारतीय संस्कृति स्त्री के इस रूप को कभी नहीं स्वीकारती, उन्हें बुरी स्त्रियों के ही पंक्ति में खड़ा किया जाता रहा

है। यह अपने नाज नखरों से बड़े–बड़े अधिकारी, नेता अफसरों को अपने ईशारे पर नचाती है। ''तमाशा मिस शार्ट हैण्ड टाइप के लिए इतनी महंगी चोली की जरूरत क्यों? तमाशा ब्यूटी सैलून से सीखी ताजी अदाओं से शरमाती फिर हँस दी। हाथ से बियर धुले बाल छितराये और आँखें नचाकर कहा, 'बड़े बॉस यह छोटबॉस का स्टेडिंग आर्डर है।''[8]

स्त्रियों को साहसिक और आत्म अधिकार का चित्रण सोबती जी के कथा साहित्य में मिलता है।

पितृसत्ता का विरोध :–

कृष्णा सोबती की स्त्री पात्र चुप्पी नही साधती, वे प्रश्न करती है और विरोध करती है। परिस्थितियों से हार नहीं मानती। सामाजिक बंधनों के बीच अपनी पहचान बनाए रखती है। 'डार से बिछुड़ी' पाशो ऐसी ही स्त्री है जो नियति से हार नहीं मानती है। वह उन लाखों स्त्रियों की नियति बन कर उभरती है जो जीवन भर भटकती रही और अन्त में अपनी 'डार' पर पहुँचती है। पितृसत्ता का विरोध करती हुई वह कई स्थानों पर दिखती है। उसके धर से भागने में तत्कालीन सामाजिक मूल्यों से मुक्ति की छटपटाहट है क्योंकि भागना उसका अपना निर्णय हैं। उसके भागने में पलायन नहीं विद्रोह है। उस सामंती वातावरण के विरूद्ध जो एक इन्सान के रूप में जीने की आजादी नहीं देता। कृष्णा सोबती की स्त्री पात्रों का मुख्य रूप से विरोधी स्वर ही उभरकर सामने आया। किन्तु विरोध का स्वरूप थोड़ा भिन्न है। वह स्त्री मुक्ति का पक्ष लेती है लेकिन उनके लेखन में कहीं भी घोषित रूप से स्त्रियों को पुरुषों के विरूद्ध आक्रोश या विद्रोह की भावना से उद्वेलित होते हुए चित्रित नहीं किया है। इन स्त्रियों ने कहीं भी रूढ़ि, संस्कार, मूल्य अथवा मान्यता की आलोचना नही की है। मित्रों ऐसी स्त्री पात्र बेबाक है किन्तु विद्रोही नही है। हम यह कह सकते हैं कि ये स्त्रियाँ परम्परागत सामाजिक मूल्यों से संघर्ष करती अवश्य नजर आती है।

'मित्रो मरजानी' की मित्रो मुँहजोर है, वह पुरुष समाज के नैतिकतावादी दलीलों के समक्ष चुनौती बनकर खड़ी होती है।

'दिलो–दानिश' में वकील साहब पत्नी के होते हुए भी महक को रखैल के रूप में रखता है। उस कारण पति–पत्नी में झगड़ा होता रहता है। पत्नी से वह बेहयाई से कहता है– ''आपको हमारी कारगुजारियों से भी भला क्या लेना। आखिर को हम मर्द हैं। छोटे–मोटे गुनाहो पर क्या....।''[9] वह गलत है फिर भी पुरुष वर्चस्व के कारण अपनी पत्नी को चुप करा देता है। पुरुषों की दृष्टि में स्त्री का वही रूप है। आज स्त्री स्वतन्त्र है, स्वावलम्बी है, स्वाभिमानी है तो उसे पुरुष शंका की दृष्टि से देखता है।

'समय–सरगम' की आरण्या स्त्री चेतना की सशक्त प्रतीक है। वह स्त्री पीड़ा को झेला नहीं किंतु बहुत पास से देखा है। जिस पर वह ईशान से कहती है– ''सृष्टि के दो मन, स्त्री–पुरुष अलग–अलग दिशाओं से एक ही बिंदु को देख रहे हैं। देख रहे हैं कि मानवीय होने के एक से अधिकार को पा सके। जी सकें।''[10] इसी क्रम में 'ऐ लड़की' की अम्मू अपनी बेटी को वर ढूँढ़ने के लिए प्रेरित करती है। वह अपनी बेटी को पितृ सत्तात्मक दबाव व उत्पीड़नों से मुक्त रखना चाहती है।

अस्तित्व की तलाश :–

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य की स्त्रियाँ अधिकतर स्वयं के अस्तित्व की तलाश का संघर्ष करते नजर आती है। ये स्त्री पात्र समाज द्वारा निर्धारित सीमाओं को स्वीकार नहीं करती, अपितु अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को पहचानने और सथापित करने का प्रयास करती हैं।

'मित्रो मरजानी' की नायिका 'मित्रो' इसका सशक्त उदाहरण है। मित्रो अपने दाम्पत्य जीवन और सामाजिक व्यवस्था के भीतर रहते हुए भी अपनी इच्छाओं, भावनाओं और अधिकारों को खुलकर व्यक्त करती है। वह समाज की झूठी नैतिकता को चुनौती देती है और अपने अस्तित्व को दबने नही देती। वह परंपराओं और रूढ़ियों के बीच अपने आत्मसम्मान को बचाए दखने के लिए संघर्ष करती है।

'जिन्दगीनामा' की नायिका अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए परिस्थितियों से जूझती है। वह व्यक्ति के रूप में केवल समाज का हिस्सा नहीं बनना चाहती, उसके साथ अपनी अलग पहचान और गरिमा के साथ उपस्थित है। महरी चाची, शाहनी, करतारों, लखमी और राबयाँ ये सभी स्त्री पात्र अपने–अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु प्रयास करती हैं।

'ऐ लड़की' की बेटी हो, या समय–सरगम की आरण्या हो, तिन पहाड़ की जया हो या सूरजमुखी अंधेरे के' 'रत्ती हो ये सभी स्त्रियाँ अपने आप से लड़ रही हैं। ऐ लड़की की अम्मू अपने अस्तित्व के लिए मॉग करती है– ''मैं तितली नहीं मॉग रही, अपना हक माँग रही हूँ। मुझे दे दो। ताजी 'हवा' में सांस लेने दो।''[11] सूरजमुखी अंधेरे के रत्ती को भी अपने अस्तित्व की तलाश है। वह अपने मित्र रोहित से कहती है–

''तुम मेरे गार्जियन नहीं हो। हम एक–दूसरे को पसंद नहीं करते... बस इतना ही हक़ एक दूसरे पर है। मुझे किसके साथ जाना चाहिए यह मेरे सोचने की बात है। किसी और की नहीं।''[12] वह अपना फैसला स्वयं लेना चाहती है वह अपने अस्तित्व को खोना नही चाहती।

'समय सरगम' की आरण्या भी कहती नजर आती है– ''महाराज वह अब शोषित और प्रताड़ित महसूस करने लगी है। उन्हें भी अपने देह में से किसी गुम आत्मा की आवाज सुनाई पड़ने लगी है।''[13]

दिलो दानिश की महक बानो वकील साहब की पत्नी नही रखैल है किन्तु वह उससे अपमानित नही होती। लेकिन एक समय बाद वह अपने अस्तित्व व पहचान की माँग करती है। आज से पहले हम औरत ही नही थे ओढ़नी थे, अंगिया थे, सलवार थे.... जूती अपनी और पांव किसी को सौंप रखे थे।''[14] महक का यह फैसला अपने अस्तित्व बोध का प्रमाण है।

इसी क्रम में कहानी 'बदली बरस गई' की कलयाणी माँ की तरह आश्रम वासिनी बनकर नही जीना चाहतीं वह स्वयं का परिवार घर चाहती है। वह खुली हवा में सांस लेना चाहती है। वह अपनी मॉ से कहती है– ''जाती हूँ माँ–मेरे लिए अब भी समय है। आश्रम की कोठरी में कल से मेरा दम नही घुटेगा, अब मेरा अपना घर होगा।''[15]

तिन पहाड़ की जया अपमान सहन नहीं कर पाती। वह श्री दा से कहती हे– ''मन में आ जाने से जिस–तिस का अपमान करते चलेंगे, यह अधिकार आपको किसने दिया श्री–दा?''[16]

निष्कर्षतः हम हिन्दी कथा साहित्य में कृष्णा सोबती की स्त्री पात्र की भूमिका को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। स्त्री की स्वतन्त्रता और स्त्री चिन्तन को भी हम विचार पूर्वक देखते हैं जो उनके कथा साहित्य में स्त्री के स्वरूप को विस्तार देती है।

संदर्भ सूची

1. समय–सरगम, कृष्णा सोबती, पृ0 17
2. सोबती एक सोहबत, कृष्णा सोबती, पृ0 388
3. जिन्दगीनामा, कृष्णा सोबती, पृ0 49
4. कृष्णा सोबती : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डा0 शंकर ए0 राठौड़, पृ0 72
5. मित्रो मरजानी, कृष्णा सोबती, पृ0 20
6. वही, पृ0 87
7. सूरजमुखी अंधेरे के, कृष्णा सोबती, पृ0 130
8. जिन्दगीनामा, कृष्णा सोबती, पृ0 40
9. दिलो–दानिश, कृष्णा सोबती, पृ0 42
10. समय–सरगसम, कृष्णा सोबती, पृ0 26
11. ऐ लड़की, कृष्णा सोबती, पृ0 68
12. सूरजमुखी अंधेरे के, कृष्णा सोबती, पृ0 68–69
13. समय–सरगम, कृष्णा सोबती, पृ0 142
14. दिलोदानिश, कृष्णा सोबती, पृ0 176
15. बादलों के घेरे, कृष्णा सोबती, पृ0 73
16. तिन पहाड़, कृष्णा सोबती, पृ0 76

स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् कला एवं विज्ञान वर्ग की विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का तुलनात्मक अध्ययन करना

आकांक्षा तिवारी*
प्रो. राजेश कुमार सिंह**
डॉ. अनुपम सिंह***

प्रस्तावना

सामान्य शब्दों में अध्ययन से तात्पर्य किसी व्यक्ति द्वारा अपनी बौद्धिक क्षमता के विकास हेतु किए जाने वाले प्रयासों से है। अध्ययन वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करता है तथा अपनी समझ, विवेक एवं तार्किक शक्ति का विकास करता है। अध्ययन के द्वारा व्यक्ति विभिन्न क्षेत्रों में अपनी संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास करते हुए अपने वातावरण एवं समाज के साथ समायोजन स्थापित करने का प्रयास करता है। मानव जीवन में अध्ययन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इसके माध्यम से व्यक्ति न केवल ज्ञान अर्जित करता है, बल्कि अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास भी करता है।

शिक्षा में अध्ययन से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा विद्यार्थी ज्ञान, कौशल तथा दक्षताओं का अर्जन करता है। अपने विषय–क्षेत्र से संबंधित ज्ञान में वृद्धि करने, बौद्धिक सुधार लाने तथा आवश्यक दक्षताओं को विकसित करने के लिए विद्यार्थी अध्ययन करता है। अध्ययन के अंतर्गत पढ़ना, लिखना, निरीक्षण करना, चिंतन–मनन करना तथा दूसरों के अनुभवों से सीखना सम्मिलित है। इन प्रक्रियाओं के माध्यम से विद्यार्थी नए तथ्यों, विचारों, विषयों, विधियों तथा समस्याओं के संबंध में ज्ञान प्राप्त करता है, जिनसे वह पहले अनभिज्ञ होता है। अध्ययन व्यक्ति को नवीन परिस्थितियों का सामना करने तथा समस्याओं का समाधान खोजने में भी सक्षम बनाता है।

अध्ययन आदत दो शब्दों से मिलकर बना है 'अध्ययन' एवं 'आदत'। अध्ययन का आशय ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया से है, जबकि आदत से तात्पर्य किसी कार्य को नियमित रूप से करने की प्रवृत्ति से है। जब कोई विद्यार्थी नियमित रूप से योजनाबद्ध ढंग से अध्ययन करता है तथा अध्ययन संबंधी गतिविधियों को अपने दैनिक जीवन का अंग बना लेता है, तब उसे अध्ययन आदत कहा जाता है। अध्ययन आदतें व्यक्ति के शैक्षिक जीवन को व्यवस्थित एवं प्रभावी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

अध्ययन केवल पढ़ने–लिखने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इससे संबंधित समस्त शैक्षिक क्रियाकलापों को भी सम्मिलित करता है। अध्ययन आदत से तात्पर्य विद्यार्थियों में दृढ़ संकल्प के साथ स्वेच्छा से अध्ययन करने की विधियों एवं आदतों से है। अध्ययन आदतों में एकाग्रता की आदत, नोट्स बनाने की आदत, कार्य–योजना बनाकर अध्ययन करना, समय का उचित प्रबंधन करना तथा अन्य अध्ययन तकनीकों का उपयोग करना सम्मिलित है। अच्छी अध्ययन आदतें विद्यार्थियों को समय का सदुपयोग करने तथा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती हैं।

प्रायः देखा जाता है कि प्रत्येक विद्यार्थी की अध्ययन आदतें एक–दूसरे से भिन्न होती हैं। कुछ विद्यार्थी नोट्स बनाकर अध्ययन करना पसंद करते हैं, जबकि कुछ विद्यार्थी सीधे पुस्तकों से पढ़ना अधिक उचित समझते हैं। इसी प्रकार कुछ विद्यार्थी कार्य–योजना बनाकर अध्ययन करते हैं, जबकि अन्य विद्यार्थी अपनी सुविधा के अनुसार अध्ययन करना पसंद करते हैं। कुछ विद्यार्थी प्रातःकाल अध्ययन करना अधिक लाभदायक मानते हैं, जबकि कुछ रात्रि के समय अध्ययन करना पसंद करते हैं। यह भिन्नता विद्यार्थियों की रुचि, क्षमता, पारिवारिक वातावरण तथा शैक्षिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होती है।

वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक युग में अध्ययन आदतों का महत्व और भी बढ़ गया है। आज विद्यार्थियों को विभिन्न परीक्षाओं, प्रतियोगिताओं तथा शैक्षिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में केवल बुद्धिमत्ता ही सफलता का आधार नहीं होती, बल्कि सुव्यवस्थित अध्ययन आदतें भी सफलता प्राप्त करने में

* शोधार्थी, शोध केन्द्र – शिक्षाशास्त्र विभाग दी.द.उ. गोरखपुर वि.वि. गोरखपुर उ.प्र.
** शोध निर्देशक, शोध केन्द्र – शिक्षाशास्त्र विभाग दी.द.उ. गोरखपुर वि.वि. गोरखपुर उ.प्र.
*** सह शोध निर्देशक, शोध केन्द्र – शिक्षाशास्त्र विभाग दी.द.उ. गोरखपुर वि.वि. गोरखपुर उ.प्र.

महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। नियमित अध्ययन, समयबद्ध पुनरावृत्ति तथा अनुशासित कार्यशैली विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होती हैं।

चाहे विद्यार्थी कला वर्ग का हो अथवा विज्ञान वर्ग का, पढ़ाई में तेज हो या अपेक्षाकृत कमजोर, वह अपनी अध्ययन आदतों में सकारात्मक परिवर्तन लाकर अपनी योग्यताओं का विकास कर सकता है। एक विद्यार्थी के लिए अच्छी अध्ययन आदतें अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं, क्योंकि इनके माध्यम से वह अपनी शैक्षिक उपलब्धियों, बौद्धिक कौशलों तथा विभिन्न दक्षताओं में निरंतर सुधार कर सकता है। इस प्रकार अध्ययन आदतें विद्यार्थियों के शैक्षिक, बौद्धिक तथा व्यक्तित्व विकास की आधारशिला मानी जाती हैं तथा उनके भविष्य के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

शोध की आवश्यकता

शिक्षा के क्षेत्र में विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का विशेष महत्व है, क्योंकि अध्ययन आदतें ही उनकी शैक्षिक उपलब्धियों, बौद्धिक विकास तथा व्यक्तित्व निर्माण को प्रभावित करती हैं। प्रत्येक विद्यार्थी की अध्ययन शैली, अध्ययन पद्धति तथा अध्ययन के प्रति दृष्टिकोण भिन्न–भिन्न होता है, जिसके कारण उनकी शैक्षिक उपलब्धियों में भी अंतर देखने को मिलता है। वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक युग में विद्यार्थियों के लिए केवल ज्ञान अर्जित करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि प्रभावी अध्ययन आदतों का विकास करना भी आवश्यक है।

स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के समक्ष अनेक शैक्षिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक चुनौतियाँ उपस्थित होती हैं। ऐसी परिस्थितियों में उनकी अध्ययन आदतों का अध्ययन करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। विशेष रूप से कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में संभावित अंतर को समझना शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस अध्ययन के माध्यम से यह ज्ञात किया जा सकता है कि किस वर्ग के विद्यार्थियों में अध्ययन आदतें अधिक विकसित हैं तथा किन क्षेत्रों में सुधार की आवश्यकता है।

प्रस्तुत शोध विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों के संबंध में उपयोगी जानकारी प्रदान करेगा तथा अध्ययन आदतों को प्रभावित करने वाले कारकों को समझने में सहायता करेगा। इसके आधार पर विद्यार्थियों में प्रभावी अध्ययन आदतों के विकास हेतु आवश्यक उपाय सुझाए जा सकेंगे। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्रस्तुत अध्ययन किया गया है।

शोध की शैक्षिक उपयोगिता

प्रस्तुत शोध की शैक्षिक उपयोगिता अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह अध्ययन विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट करने में सहायक होगा। इसके निष्कर्ष शिक्षकों, अभिभावकों, शिक्षा–प्रशासकों तथा शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

इस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर शिक्षकों को विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों को समझने तथा उनमें सुधार लाने के लिए उपयुक्त शिक्षण रणनीतियाँ विकसित करने में सहायता मिलेगी। अभिभावक भी विद्यार्थियों के लिए अनुकूल अध्ययन वातावरण का निर्माण करने में सक्षम होंगे। इसके अतिरिक्त महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में अध्ययन कौशल विकास कार्यक्रमों के निर्माण एवं संचालन में भी इस शोध के निष्कर्ष उपयोगी सिद्ध होंगे।

यह अध्ययन विद्यार्थियों में नियमित अध्ययन, समय–प्रबंधन, एकाग्रता, पुनरावृत्ति तथा स्वाध्याय जैसी सकारात्मक अध्ययन आदतों के विकास को प्रोत्साहित करेगा। साथ ही यह भविष्य में अध्ययन आदतों से संबंधित अन्य शोध कार्यों के लिए संदर्भ सामग्री के रूप में भी उपयोगी होगा। इस प्रकार प्रस्तुत शोध विद्यार्थियों की शैक्षिक उन्नति तथा शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करेगा।

शोध में प्रयुक्त शब्दों का परिभाषीकरण

स्नातक स्तर – प्रस्तुत अध्ययन में स्नातक स्तर से तात्पर्य बी.ए. (B.A.), बी.एससी. (B.Sc.) तथा बी.कॉम. (B.Com) में अध्ययनरत प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों से है। ये विद्यार्थी उच्च शिक्षा के प्रारम्भिक चरण में होते हैं तथा विभिन्न शैक्षिक, सामाजिक एवं बौद्धिक अनुभवों से गुजर रहे होते हैं। अध्ययन में सम्मिलित विद्यार्थियों का चयन इसी स्तर से किया गया है, जिससे उनकी अध्ययन आदतों का समुचित मूल्यांकन किया जा सके।

कला वर्ग – प्रस्तुत अध्ययन में कला वर्ग से तात्पर्य बी.ए. (B.A.) में अध्ययनरत विद्यार्थियों से है। कला वर्ग के अंतर्गत इतिहास, राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, हिन्दी, भूगोल, अर्थशास्त्र तथा अन्य मानविकी विषयों का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है। इन विद्यार्थियों की अध्ययन प्रकृति एवं अध्ययन

शैली अन्य वर्गों से भिन्न हो सकती है।

विज्ञान वर्ग – प्रस्तुत अध्ययन में विज्ञान वर्ग से तात्पर्य बी.एससी. (B.Sc.) में अध्ययनरत विद्यार्थियों से है। विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों द्वारा भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, गणित, जीव विज्ञान तथा अन्य विज्ञान विषयों का अध्ययन किया जाता है। विज्ञान विषयों की प्रयोगात्मक प्रकृति के कारण इन विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं अध्ययन पद्धतियों में विशेष प्रकार की नियमितता देखने को मिलती है।

अध्ययन आदत – अध्ययन आदत दो शब्दों के योग से बना है—'अध्ययन' एवं 'आदत'। अध्ययन से तात्पर्य केवल पढ़ने, लिखने एवं समझने तक सीमित नहीं है, जबकि आदत के अंतर्गत पढ़ने–लिखने से संबंधित विभिन्न क्रियाकलापों को सम्मिलित किया जाता है। सामान्यतः अध्ययन आदतों का संबंध अध्ययन के प्रति व्यक्ति के व्यवहार, रुचि, दृष्टिकोण तथा कार्य करने के तरीकों से होता है।

अध्ययन आदतों में समय का सदुपयोग, नियमित अध्ययन, एकाग्रता, नोट्स तैयार करना, पुनरावृत्ति करना, अध्ययन सामग्री का उचित चयन तथा अध्ययन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण जैसी विशेषताएँ सम्मिलित होती हैं। अच्छी अध्ययन आदतें विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जबकि कमजोर अध्ययन आदतें उनके शैक्षिक प्रदर्शन को प्रभावित कर सकती हैं। इसलिए अध्ययन आदतों को विद्यार्थी की शैक्षिक सफलता का एक महत्वपूर्ण निर्धारक माना जाता है।

शोध कार्य के उद्देश्य

अपने शोध कार्य को पूर्ण करने हेतु शोधकर्ता द्वारा निम्नलिखित उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है–

1. कला एवं विज्ञान वर्ग में अध्ययन करने वाले स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का अध्ययन करना।
2. कला एवं विज्ञान वर्ग में अध्ययन करने वाले स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. कला एवं विज्ञान वर्ग में अध्ययन करने वाले स्नातक स्तर के छात्र एवं छात्राओं की अध्ययन आदतों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ

शोधकर्ता ने अपने शोध कार्य को दिशा प्रदान करने तथा शोध उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं (Null Hypothesè) का निर्माण किया है–

01. स्नातक स्तर पर अध्ययन करने वाले कला वर्ग तथा विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

$$H_0 : M_1 = M_2$$

$$H_1 : M_1 \neq M_2$$

02. स्नातक स्तर पर अध्ययन करने वाले कला वर्ग एवं विज्ञान वर्ग के छात्रों की अध्ययन आदतों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

$$H_0 : M_3 = M_4$$

$$H_1 : M_3 \neq M_4$$

03. स्नातक स्तर पर अध्ययन करने वाले कला वर्ग एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की अध्ययन आदतों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

$$H_0 : M_5 = M_6$$

$$H_1 : M_5 \neq M_6$$

शोध विधि

शोध समस्या की प्रकृति के आधार पर प्रत्येक शोधकर्ता अपनी शोध–विधि का निर्धारण करता है। प्रस्तुत शोध कार्य में वर्णनात्मक अनुसंधान (Descriptive Research) के अंतर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या

प्रस्तुत शोध कार्य में गोरखपुर मंडल में संचालित सभी सरकारी, निजी एवं अनुदानित महाविद्यालयों में अध्ययनरत स्नातक प्रथम वर्ष के कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों को जनसंख्या के रूप में लिया गया है।

न्यादर्श का चयन

प्रस्तुत अध्ययन में न्यादर्श के रूप में गोरखपुर मंडल से (यादृच्छिक) प्रतिचयन विधि द्वारा चयनित तीन महाविद्यालयों के 600 विद्यार्थियों को उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन विधि द्वारा सम्मिलित किया गया। इन 600 विद्यार्थियों में 300 कला वर्ग तथा 300 विज्ञान वर्ग के विद्यार्थी शामिल हैं।

मनोवैज्ञानिक उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों के मापन हेतु मनोवैज्ञानिक उपकरण के रूप में पालसाने (च्सेंदम) एवं शर्मा द्वारा निर्मित अध्ययन आदत आविष्कारिका (Study Habits Inventory – SHI) का प्रयोग किया गया है। यह उपकरण विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का मापन करने के लिए व्यापक रूप से प्रयुक्त किया जाता है।

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकीय तकनीकें

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण हेतु विभिन्न सांख्यिकीय तकनीकों का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण के लिए मध्यमान (Mean), मानक विचलन (Standard Deviation) तथा क्रान्तिक अनुपात (Critical Ratio) का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त परिणामों को स्पष्ट एवं सरल रूप में प्रस्तुत करने के लिए आयत चित्र (Bar Diagram) का भी प्रयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

स्नातक स्तर पर अध्ययन करने वाले कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का विश्लेषण उनके द्वारा प्राप्त अध्ययन आदत स्कोरों के आधार पर किया गया है। प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण कर उनके परिणामों की व्याख्या की गई है, जिससे दोनों वर्गों के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों की स्थिति एवं उनमें विद्यमान अंतर को स्पष्ट किया जा सके।

परिकल्पना संख्या – 01

स्नातक स्तर पर अध्ययन करने वाले कला तथा विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में सार्थक अंतर है।

H0 : M1 = M2

H1 : M1 ≠ M2

सारणी सं. 01

समूह	संख्या (N)	मध्यमान (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	मध्यमान की प्रमाणिक त्रुटि	क्रान्तिक अनुपात (t)	सार्थकता स्तर	
कला वर्ग के विद्यार्थी	300	68.65	11.25	0.71	2.93	.05	.01
विज्ञान वर्ग के विद्यार्थी	300	70.90	6.25			सार्थक अंतर है	

व्याख्या

परिकल्पना संख्या 1 की जाँच क्रान्तिक अनुपात (Critical Ratio) अथवा ज–परीक्षण के आधार पर की गई। गणना के उपरांत क्रान्तिक अनुपात का मान 2.93 प्राप्त हुआ, जो 0.05 स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक मान 1.96 तथा 0.01 स्तर पर आवश्यक मान 2.58 से अधिक है। अतः प्राप्त अंतर दोनों स्तरों पर सांख्यिकीय रूप से सार्थक है।

इस प्रकार शून्य परिकल्पना (H0) अस्वीकृत की जाती है तथा वैकल्पिक परिकल्पना स्वीकार की जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर पर अध्ययन करने वाले कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में सार्थक अंतर विद्यमान है।

प्राप्त मध्यमानों के आधार पर यह भी स्पष्ट होता है कि विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों (M = 70.90) की अध्ययन आदतें कला वर्ग के विद्यार्थियों (M = 68.65) की अपेक्षा अधिक विकसित हैं। अतः यह निष्कर्ष

निकाला जा सकता है कि विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों में अध्ययन आदतों का स्तर कला वर्ग के विद्यार्थियों की तुलना में अपेक्षाकृत उच्च है। यह परिणाम 0.01 स्तर अर्थात् 99 प्रतिशत विश्वास स्तर पर भी पुष्ट होता है।

परिकल्पना संख्या – 02

स्नातक स्तर पर अध्ययन करने वाले कला तथा विज्ञान वर्ग के छात्रों की अध्ययन आदतों में सार्थक अंतर है।

H0 : M3 = M4

H1 : M3 ≠ M4

सारणी सं. 02

समूह	संख्या (N)	मध्यमान (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	मध्यमान की प्रमाणिक त्रुटि	क्रान्तिक अनुपात (t)	सार्थकता स्तर	
कला वर्ग के छात्र	150	67.65	11.95	0.82	3.66	.05	.01
विज्ञान वर्ग के छात्र	150	70.65	6.30			सार्थक अंतर है	

व्याख्या

परिकल्पना संख्या 2 की जाँच क्रान्तिक अनुपात (Critical Ratio) के आधार पर की गई। गणना के उपरांत क्रान्तिक अनुपात का मान 3.66 प्राप्त हुआ, जो 0.05 स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक मान 1.96 तथा 0.01 स्तर पर आवश्यक मान 2.58 से अधिक है। अतः प्राप्त अंतर दोनों स्तरों पर सांख्यिकीय रूप से सार्थक है।

फलस्वरूप शून्य परिकल्पना (H0) अस्वीकृत की जाती है तथा वैकल्पिक परिकल्पना (H1) स्वीकार की जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर पर अध्ययन करने वाले कला एवं विज्ञान वर्ग के छात्रों की अध्ययन आदतों में सार्थक अंतर विद्यमान है।

प्राप्त मध्यमानों से ज्ञात होता है कि विज्ञान वर्ग के छात्रों का मध्यमान (70.65) कला वर्ग के छात्रों के मध्यमान (67.65) से अधिक है। अतः विज्ञान वर्ग के छात्रों की अध्ययन आदतें कला वर्ग के छात्रों की अपेक्षा अधिक विकसित पाई गईं। यह परिणाम 0.01 स्तर ;99 प्रतिशत विश्वास स्तरद्ध पर भी सार्थक है।

परिकल्पना संख्या – 03

स्नातक स्तर पर अध्ययन करने वाली कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की अध्ययन आदतों में सार्थक अंतर है।

H0 : M5 = M6

H1 : M5 ≠ M6

सारणी संख्या – 03

समूह	संख्या (N)	मध्यमान (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	मध्यमान की प्रमाणिक त्रुटि	क्रान्तिक अनुपात (t)	सार्थकता स्तर	
कला वर्ग की छात्राएँ	150	69.60	6.20	0.71	2.96	.05	.01
विज्ञान वर्ग की छात्राएँ	150	71.70	6.15			सार्थक अंतर है	

व्याख्या

परिकल्पना संख्या 3 की जाँच क्रान्तिक अनुपात (Critical Ratio) के आधार पर की गई। गणना के उपरांत क्रान्तिक अनुपात का मान 2.96 प्राप्त हुआ, जो 0.05 स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक मान 1.96 तथा 0.01 स्तर पर आवश्यक मान 2.58 से अधिक है। अतः प्राप्त अंतर दोनों स्तरों पर सांख्यिकीय रूप से सार्थक है।

फलस्वरूप शून्य परिकल्पना (H0) अस्वीकृत की जाती है तथा वैकल्पिक परिकल्पना (H1) स्वीकार की जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि स्नातक स्तर पर अध्ययन करने वाली कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की अध्ययन आदतों में सार्थक अंतर विद्यमान है।

प्राप्त मध्यमानों से ज्ञात होता है कि विज्ञान वर्ग की छात्राओं का मध्यमान (71.70) कला वर्ग की

छात्राओं के मध्यमान (69.60) से अधिक है। अतः विज्ञान वर्ग की छात्राओं की अध्ययन आदतें कला वर्ग की छात्राओं की अपेक्षा अधिक विकसित पाई गईं। यह परिणाम 0.01 स्तर (99 प्रतिशत विश्वास स्तर) पर भी सार्थक है।

निष्कर्ष एवं व्याख्या

परिकल्पना संख्या 1

स्नातक स्तर पर अध्ययन करने वाले कला तथा विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में सार्थक अंतर है।

उक्त परिकल्पना के परीक्षण के उपरांत यह पाया गया कि कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में सार्थक अंतर विद्यमान है। अध्ययन के परिणामों से ज्ञात हुआ कि विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें कला वर्ग के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक विकसित हैं।

इसका एक प्रमुख कारण यह हो सकता है कि विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की कक्षाएँ अपेक्षाकृत अधिक नियमित रूप से संचालित होती हैं तथा विज्ञान विषयों में प्रयोगात्मक कार्यों, प्रयोगशाला गतिविधियों एवं नियमित अभ्यास की आवश्यकता होती है। इसके फलस्वरूप विद्यार्थियों को निरंतर अध्ययन करने की आदत विकसित करनी पड़ती है।

इसके अतिरिक्त विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों को अध्ययन हेतु अपेक्षाकृत अधिक शैक्षणिक संसाधन, मार्गदर्शन तथा प्रोत्साहन प्राप्त होता है। नियमित अध्ययन, समयबद्ध कार्य तथा विषय की प्रकृति के कारण उनकी अध्ययन आदतों में सकारात्मक विकास होता है। यही कारण है कि विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें कला वर्ग के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक प्रभावी एवं विकसित पाई गई हैं।

परिकल्पना संख्या 2

स्नातक स्तर पर अध्ययन करने वाले कला तथा विज्ञान वर्ग के छात्रों की अध्ययन आदतों में सार्थक अंतर है।

उक्त परिकल्पना के परीक्षण के उपरांत यह पाया गया कि कला एवं विज्ञान वर्ग के छात्रों की अध्ययन आदतों में सांख्यिकीय दृष्टि से सार्थक अंतर विद्यमान है। अध्ययन के परिणामों से ज्ञात हुआ कि विज्ञान वर्ग के छात्रों की अध्ययन आदतें कला वर्ग के छात्रों की अपेक्षा अधिक विकसित हैं।

इसका कारण यह हो सकता है कि विज्ञान वर्ग के छात्रों को अपने विषयों की प्रकृति के अनुसार नियमित अध्ययन, प्रयोगशाला कार्य, प्रायोगिक गतिविधियों तथा सतत अभ्यास की आवश्यकता होती है। इसके फलस्वरूप उनमें अध्ययन के प्रति अनुशासन, नियमितता एवं एकाग्रता का विकास अधिक होता है। दूसरी ओर कला वर्ग के छात्रों में अध्ययन की पद्धति अपेक्षाकृत लचीली होने के कारण अध्ययन आदतों में विविधता पाई जाती है। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विज्ञान वर्ग के छात्रों की अध्ययन आदतें कला वर्ग के छात्रों की तुलना में अधिक प्रभावी एवं व्यवस्थित हैं।

परिकल्पना संख्या 3

स्नातक स्तर पर अध्ययन करने वाली कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की अध्ययन आदतों में सार्थक अंतर है।

उक्त परिकल्पना के परीक्षण के उपरांत यह ज्ञात हुआ कि कला एवं विज्ञान वर्ग की छात्राओं की अध्ययन आदतों में सार्थक अंतर विद्यमान है। अध्ययन के परिणामों से स्पष्ट हुआ कि विज्ञान वर्ग की छात्राओं की अध्ययन आदतें कला वर्ग की छात्राओं की अपेक्षा अधिक विकसित हैं।

इसका एक प्रमुख कारण विज्ञान विषयों की अध्ययन प्रकृति, नियमित प्रायोगिक कार्य एवं शैक्षणिक अनुशासन हो सकता है। विज्ञान वर्ग की छात्राएँ अध्ययन के प्रति अधिक योजनाबद्ध दृष्टिकोण अपनाती हैं तथा समय–प्रबंधन, पुनरावृत्ति एवं नियमित अभ्यास पर विशेष ध्यान देती हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें अध्ययन हेतु आवश्यक संसाधन एवं शैक्षणिक मार्गदर्शन भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है। फलस्वरूप उनकी अध्ययन आदतें अधिक प्रभावशाली एवं व्यवस्थित बनती हैं। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विज्ञान वर्ग की छात्राओं की अध्ययन आदतें कला वर्ग की छात्राओं की अपेक्षा बेहतर हैं।

समग्र निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों, छात्रों तथा छात्राओं की अध्ययन आदतों में सार्थक अंतर विद्यमान है। तीनों परिकल्पनाओं के परिणामों से यह स्पष्ट

हुआ कि विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें कला वर्ग के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक विकसित एवं प्रभावी हैं। नियमित अध्ययन, प्रयोगात्मक कार्यों की अनिवार्यता, शैक्षणिक अनुशासन तथा अध्ययन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण इसके प्रमुख कारण हो सकते हैं। अतः विद्यार्थियों में उत्तम अध्ययन आदतों के विकास हेतु उचित शैक्षणिक वातावरण, नियमित मार्गदर्शन तथा अध्ययन के प्रति प्रेरणा प्रदान किया जाना आवश्यक है।

सुझाव

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं–

1. विद्यार्थियों में नियमित अध्ययन की आदत विकसित करने हेतु महाविद्यालय स्तर पर विशेष मार्गदर्शन कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।
2. विद्यार्थियों को समय–प्रबंधन, अध्ययन कौशल तथा परीक्षा की तैयारी से संबंधित प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।
3. शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों को नियमित अध्ययन, नोट्स निर्माण तथा पुनरावृत्ति के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
4. अध्ययन हेतु महाविद्यालयों में उपयुक्त शैक्षणिक वातावरण एवं आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए।
5. विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में सुधार लाने हेतु समय–समय पर परामर्श एवं निर्देशन सेवाएँ प्रदान की जानी चाहिए।
6. अभिभावकों को भी विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों के विकास में सक्रिय सहयोग प्रदान करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।
7. विद्यार्थियों में स्वाध्याय, अनुशासन तथा आत्मनिर्भर अध्ययन की भावना विकसित की जानी चाहिए।
8. कला वर्ग के विद्यार्थियों को अध्ययन के प्रति अधिक प्रेरित करने तथा उनकी अध्ययन आदतों को सुदृढ़ बनाने के लिए विशेष शैक्षिक कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।
9. अध्ययन आदतों के विकास हेतु पुस्तकालय, वाचनालय एवं डिजिटल शिक्षण संसाधनों का अधिकाधिक उपयोग किया जाना चाहिए।
10. विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का समय–समय पर मूल्यांकन कर आवश्यक सुधारात्मक उपाय अपनाए जाने चाहिए।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- अग्रवाल, जे. सी. (2009). शैक्षिक अनुसंधान का परिचय। नई दिल्ली विकास पब्लिशिंग हाउस।
- शर्मा, आर. ए. (2011). शैक्षिक अनुसंधान। मेरठ आर. लाल बुक डिपो।
- सिंह, ए. के. (2012). मनोविज्ञान, समाजशास्त्र एवं शिक्षा में अनुसंधान विधियाँ। पटना मोतीलाल बनारसीदास।
- भटनागर, आर. पी. (2008). शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकी। आगरा विनोद पुस्तक मंदिर।
- गुप्ता, एस. पी. (2010). सांख्यिकीय विधियाँ। इलाहाबाद शारदा पुस्तक भवन।
- बेस्ट, जॉन डब्ल्यू. एवं कान,जेम्स वी.(Best & Kahn).(2026).Research in EducationA नई दिल्लीः प्रेन्टिस हॉल ऑफ इंडिया।
- पालसाने, एम. एन. एवं शर्मा, एस. (1989). Study Habits Inventory ManualA आगरा नेशनल साइकोलॉजिकल कॉर्पोरेशन।
- पाठक, पी.डी.(2008) *भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं,* आगराः अग्रवाल पब्लिकेशन।
- पाठक, पी0 डी0 (2014) भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं, आगरा, श्री विनोद पुस्तक मंदिर पेज संख्या 152–163.
- भटनागर, सुरेश, ''शिक्षा मनोविज्ञान'', मेरठ, 1991, पृ. 87
- मंगल एस०के०: (2010) स्टैटिक्स इन साइक्लोजी एण्ड एजूकेशन, पीएचआई लर्निंग प्रा०लि०, नई दिल्ली।
- गुप्ता एस०पी०, अनुसंधान विधियां, आगण, एच०पी० भार्गव बुक हाउस।
- कपिल एच०के० (1999), अनुसंधान विधियां, आगण, एच०पी० भार्गव बुक हाउस।
- सिंह ए०के० : (2010) शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पटना।
- कपिल, एच. के. (2014). अनुसंधान विधियाँ। आगरा एच. पी. भार्गव बुक हाउस।
- चौबे, एस. पी. एवं चौबे, अखिलेश (2013). शिक्षा में अनुसंधान। लखनऊ पुस्तक प्रकाशन।
- कोठारी, सी. आर. (2008). Research Methodology: Methods and Techniques नई दिल्ली न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स।

विद्यानिवास मिश्र के निबंध साहित्य में परंपरा एवं संस्कृति

श्री जितेन्द्र कुमार यादव*

भूमिका

भारतीय निबंध साहित्य में कुछ ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने केवल विचारों की अभिव्यक्ति तक अपने लेखन को सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे एक व्यापक सांस्कृतिक चेतना से जोड़ दिया। **विद्यानिवास मिश्र** का नाम इस संदर्भ में अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है, क्योंकि उनके निबंधों में **भारतीय जीवन–दृष्टि, परंपरा और संस्कृति** का गहन, संवेदनशील और आत्मीय चित्रण मिलता है। उनके लिए निबंध केवल विचार प्रस्तुत करने का माध्यम नहीं, बल्कि जीवन को समझने और उसकी व्याख्या करने का एक सशक्त साधन है।

भारतीय समाज की विशेषता यह रही है कि यहाँ परंपरा केवल अतीत की धरोहर भर नहीं होती, बल्कि वह वर्तमान जीवन का अभिन्न अंग बनकर निरंतर प्रवाहित होती रहती है। इसी प्रकार, संस्कृति भी कोई स्थिर और जड़ तत्व नहीं है, बल्कि वह **निरंतर परिवर्तनशील और विकासशील प्रक्रिया** है, जो समय, स्थान और परिस्थितियों के अनुसार अपने स्वरूप को परिवर्तित करती रहती है। विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में यही जीवंतता और प्रवाह स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

उनके दृष्टिकोण में परंपरा का अर्थ केवल रूढ़ियों का पालन करना नहीं है, बल्कि वह जीवन के उन **मूल्यों, मान्यताओं और अनुभवों** का संचय है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते हुए समाज की पहचान का निर्माण करते हैं। इसी प्रकार, संस्कृति उनके लिए केवल बाहरी आचार–व्यवहार का समूह नहीं, बल्कि वह आंतरिक संवेदना है, जो मनुष्य के जीवन को अर्थ और दिशा प्रदान करती है। इस प्रकार, उनके निबंधों में **परंपरा और संस्कृति दोनों एक–दूसरे से गहराई से जुड़े** दिखाई देते हैं।

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि विद्यानिवास मिश्र परंपरा को अंधानुकरण के रूप में स्वीकार नहीं करते। वे उसे **एक जीवंत और आलोचनात्मक दृष्टि** से देखते हैं। उनके निबंधों में परंपरा के प्रति श्रद्धा तो है, किंतु वह जड़ता का समर्थन नहीं करती। वे यह स्पष्ट करते हैं कि परंपरा का वास्तविक महत्त्व तभी है, जब वह वर्तमान जीवन के साथ संवाद स्थापित कर सके और उसमें नई चेतना का संचार कर सके।

इस प्रकार, भूमिका के स्तर पर यह कहा जा सकता है कि विद्यानिवास मिश्र के निबंध साहित्य में **परंपरा और संस्कृति का स्वर केवल वर्णनात्मक नहीं, बल्कि गहन वैचारिक और अनुभूतिपरक** है। यह न केवल अतीत की स्मृति को संजोता है, बल्कि वर्तमान को समझने और भविष्य की दिशा निर्धारित करने का भी मार्ग प्रशस्त करता है।

परंपरा की अवधारणा

परंपरा की अवधारणा को सामान्यतः अतीत से जुड़े हुए उन तत्वों के रूप में समझा जाता है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते हुए वर्तमान तक पहुँचते हैं। किंतु विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में परंपरा का स्वरूप इससे कहीं अधिक व्यापक और गहन है। वे परंपरा को केवल अतीत की स्मृति या रूढ़ियों का संग्रह नहीं मानते, बल्कि उसे **जीवन के निरंतर प्रवाह का अभिन्न अंग** समझते हैं। उनके अनुसार, परंपरा वह जीवंत प्रक्रिया है, जो समय के साथ बदलते हुए भी अपने मूल स्वरूप को बनाए रखती है।

उनकी दृष्टि में परंपरा का संबंध केवल इतिहास से नहीं, बल्कि अनुभव से है। यह उन जीवन–मूल्यों, आस्थाओं और व्यवहारों का संचय है, जो समाज के दीर्घकालीन अनुभवों से निर्मित होते हैं। इस प्रकार, परंपरा केवल अतीत का बोझ नहीं, बल्कि वह **एक प्रकार की संचित बुद्धि** है, जो वर्तमान जीवन को दिशा प्रदान करती है। उनके निबंधों में यह भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि परंपरा को समझे बिना न तो वर्तमान को सही रूप में जाना जा सकता है और न ही भविष्य की कोई सार्थक कल्पना की जा सकती है।

यहाँ यह भी महत्वपूर्ण है कि विद्यानिवास मिश्र परंपरा को स्थिर और अपरिवर्तनीय नहीं मानते। वे इसे **एक गतिशील तत्त्व** के रूप में देखते हैं, जो समय और परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को परिवर्तित

* सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, उदित नारायण पी.जी. कॉलेज पडरौना, कुशीनगर

करता रहता है। इस प्रकार, परंपरा उनके यहाँ किसी जड़ता का प्रतीक नहीं, बल्कि **निरंतरता और परिवर्तन के संतुलन** का प्रतिनिधित्व करती है। यह दृष्टिकोण परंपरा को जीवंत और प्रासंगिक बनाए रखता है।

उनके निबंधों में परंपरा का संबंध लोकजीवन से विशेष रूप से जुड़ा हुआ है। वे यह स्पष्ट करते हैं कि वास्तविक परंपरा केवल ग्रंथों या शास्त्रों में नहीं, बल्कि **जनजीवन की सहज क्रियाओं, रीति–रिवाजों और व्यवहारों** में विद्यमान होती है। इस प्रकार, परंपरा का स्वर केवल उच्च वर्गीय या बौद्धिक स्तर तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह समाज के प्रत्येक स्तर पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है।

इसके साथ ही, यह भी उल्लेखनीय है कि वे परंपरा को **एक प्रकार की सांस्कृतिक निरंतरता** के रूप में देखते हैं, जो समाज की पहचान को बनाए रखती है। परंपरा के माध्यम से ही एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी से जुड़ती है और समाज में एक प्रकार की एकरूपता और स्थिरता बनी रहती है। इस प्रकार, परंपरा समाज के लिए केवल एक सांस्कृतिक धरोहर नहीं, बल्कि **एक आधारभूत संरचना** के रूप में कार्य करती है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में परंपरा की अवधारणा **एक जीवंत, गतिशील और अनुभवजन्य प्रक्रिया** के रूप में उभरती है। यह केवल अतीत का प्रतिनिधित्व नहीं करती, बल्कि वर्तमान को दिशा देने और भविष्य को आकार देने की क्षमता भी रखती है।

संस्कृति की अवधारणा

संस्कृति की अवधारणा विद्यानिवास मिश्र के निबंध साहित्य में अत्यंत केंद्रीय और व्यापक रूप में उपस्थित होती है। उनके लिए संस्कृति केवल बाहरी आचार–व्यवहार, परंपराओं या अनुष्ठानों का समूह नहीं है, बल्कि वह **मनुष्य के संपूर्ण जीवन को आंतरिक रूप से संचालित करने वाली एक सूक्ष्म चेतना** है। इस दृष्टि से संस्कृति का संबंध केवल समाज से नहीं, बल्कि व्यक्ति के अंतर्मन, उसकी संवेदनाओं और उसके जीवन–दर्शन से भी गहराई से जुड़ा हुआ है।

उनकी दृष्टि में संस्कृति का निर्माण **दीर्घकालीन अनुभवों, आस्थाओं और जीवन–मूल्यों के संचय** से होता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जो समय के साथ विकसित होती है और प्रत्येक पीढ़ी उसमें अपना योगदान जोड़ती रहती है। इस प्रकार, संस्कृति स्थिर नहीं होती, बल्कि **निरंतर विकसित होने वाली एक जीवंत परंपरा** के रूप में सामने आती है। विद्यानिवास मिश्र इस विकासशील स्वरूप को विशेष महत्व देते हैं, क्योंकि यही उसे प्रासंगिक और प्रभावशाली बनाए रखता है।

यहाँ यह भी महत्वपूर्ण है कि वे संस्कृति को केवल उच्च वर्गीय या शास्त्रीय परंपराओं तक सीमित नहीं रखते। उनके निबंधों में संस्कृति का स्वर **लोकजीवन की गहराई से जुड़ा हुआ** दिखाई देता है। ग्राम्य जीवन, लोकभाषा, लोकाचार और प्रकृति के साथ मनुष्य का संबंध–ये सभी तत्व उनके यहाँ संस्कृति के अभिन्न अंग के रूप में उपस्थित हैं। इस प्रकार, वे संस्कृति को एक व्यापक और समावेशी रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो समाज के प्रत्येक स्तर को अपने भीतर समेटे हुए है।

संस्कृति के इस व्यापक स्वरूप में **मानवीय संबंधों की भूमिका** भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार, संस्कृति केवल बाहरी रूप में दिखाई देने वाली वस्तु नहीं है, बल्कि वह मनुष्य के व्यवहार, उसकी संवेदनशीलता और दूसरों के प्रति उसके दृष्टिकोण में भी प्रकट होती है। इस प्रकार, संस्कृति का वास्तविक स्वरूप मनुष्य के भीतर निहित मानवीय मूल्यों–जैसे **सहानुभूति, सहिष्णुता और करुणा** के विकास में देखा जा सकता है।

इसके साथ ही, यह भी स्पष्ट होता है कि विद्यानिवास मिश्र संस्कृति को **जीवन के सौंदर्य और संतुलन** से जोड़ते हैं। उनके लिए संस्कृति का अर्थ केवल ज्ञान या परंपरा का संरक्षण नहीं, बल्कि जीवन को सुंदर, संतुलित और अर्थपूर्ण बनाना है। इस दृष्टि से संस्कृति एक ऐसी शक्ति बन जाती है, जो मनुष्य को केवल सामाजिक रूप से ही नहीं, बल्कि आंतरिक रूप से भी समृद्ध करती है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में संस्कृति की अवधारणा **एक जीवंत, बहुआयामी और गहन मानवीय प्रक्रिया** के रूप में उभरती है। यह केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान जीवन का सक्रिय और प्रेरक तत्व है, जो मनुष्य को उसके अस्तित्व का गहरा बोध कराता है।

संस्कृति की सही समझ के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उसे सभ्यता से अलग करके देखा जाए, क्योंकि सामान्यतः इन दोनों को एक ही अर्थ में ग्रहण कर लिया जाता है। विद्यानिवास मिश्र इस भेद को अत्यंत सूक्ष्मता से स्पष्ट करते हैं। उनके अनुसार, **सभ्यता मनुष्य के बाहरी जीवन से संबंधित** होती है–जैसे भौतिक प्रगति, तकनीकी विकास और जीवन–शैली के बाह्य साधन जबकि **संस्कृति मनुष्य के आंतरिक जीवन का प्रतिनिधित्व** करती है। यह उसके विचारों, संवेदनाओं, आचरण और मूल्यबोध से जुड़ी

होती है। इस प्रकार, सभ्यता जहाँ साधनों का विकास है, वहीं संस्कृति जीवन के उद्देश्यों और मूल्यों का निर्धारण करती है।

इस दृष्टि से यह स्पष्ट होता है कि विद्यानिवास मिश्र के लिए संस्कृति का महत्व अधिक गहन और स्थायी है। वे यह संकेत करते हैं कि यदि सभ्यता का विकास संस्कृति के मूल्यों से पृथक हो जाए, तो वह केवल बाहरी चमक–दमक तक सीमित रह जाती है और अंततः जीवन में असंतुलन उत्पन्न करती है। इसके विपरीत, संस्कृति मनुष्य को **एक नैतिक आधार** प्रदान करती है, जिससे उसका विकास संतुलित और सार्थक बनता है।

भारतीय संस्कृति की विशेषताओं का चित्रण करते हुए उनके निबंधों में **एक समन्वयवादी दृष्टिकोण** स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यहाँ विविधता को विरोध के रूप में नहीं, बल्कि समृद्धि के रूप में देखा जाता है। भिन्न–भिन्न परंपराएँ, भाषाएँ, आस्थाएँ और जीवन–शैलियाँ एक–दूसरे के साथ सह–अस्तित्व में रहती हैं और एक व्यापक सांस्कृतिक एकता का निर्माण करती हैं। यह समन्वय ही भारतीय संस्कृति की मूल आत्मा है, जिसे विद्यानिवास मिश्र अत्यंत आत्मीयता के साथ प्रस्तुत करते हैं।

इसके साथ ही, वे संस्कृति को **प्रकृति से भी गहराई से जोड़ते** हैं। उनके निबंधों में प्रकृति केवल एक बाहरी तत्व नहीं है, बल्कि वह मनुष्य के जीवन का अभिन्न अंग है। ऋतु–चक्र, पर्व–त्योहार, कृषि–जीवन और प्राकृतिक परिवेश–ये सभी संस्कृति के ऐसे तत्व हैं, जो मनुष्य को प्रकृति के साथ एक संतुलित संबंध स्थापित करने में सहायक होते हैं। इस प्रकार, उनकी सांस्कृतिक दृष्टि केवल सामाजिक ही नहीं, बल्कि **पारिस्थितिक संतुलन** से भी जुड़ी हुई है।

यह भी उल्लेखनीय है कि विद्यानिवास मिश्र संस्कृति को केवल अतीत की धरोहर के रूप में नहीं देखते, बल्कि उसे **वर्तमान जीवन की सक्रिय शक्ति** मानते हैं। वे यह स्पष्ट करते हैं कि संस्कृति तभी जीवित रह सकती है, जब वह समय के साथ संवाद करती रहे और स्वयं को नए संदर्भों में अभिव्यक्त करती रहे। इस प्रकार, संस्कृति उनके यहाँ एक गतिशील और परिवर्तनशील प्रक्रिया के रूप में सामने आती है, जो निरंतर नए रूप ग्रहण करती रहती है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में संस्कृति की अवधारणा **अत्यंत व्यापक, गहन और संतुलित रूप** में प्रस्तुत की गई है। यह न केवल मनुष्य के आंतरिक जीवन को दिशा देती है, बल्कि समाज और प्रकृति के साथ उसके संबंधों को भी संतुलित और सार्थक बनाती है।

परंपरा और संस्कृति का पारस्परिक संबंध

परंपरा और संस्कृति को अलग–अलग समझना जितना आवश्यक है, उतना ही महत्वपूर्ण यह भी है कि उनके पारस्परिक संबंध को स्पष्ट रूप से समझा जाए। विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में ये दोनों अवधारणाएँ **परस्पर पूरक और अंतर्सम्बद्ध रूप** में उपस्थित होती हैं। वे परंपरा को **संस्कृति की आधारभूमि** के रूप में देखते हैं, जबकि संस्कृति को उस आधारभूमि पर विकसित होने वाली **जीवंत अभिव्यक्ति** के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार, परंपरा और संस्कृति के बीच एक सतत् संवाद और अंतःक्रिया का संबंध स्थापित होता है।

उनकी दृष्टि में परंपरा वह माध्यम है, जिसके द्वारा संस्कृति का संचार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक होता है। यह उन **मूल्यों, आस्थाओं और अनुभवों** को संरक्षित रखती है, जो समाज की सांस्कृतिक पहचान का निर्माण करते हैं। यदि परंपरा न हो, तो संस्कृति का यह प्रवाह बाधित हो जाएगा और समाज अपनी जड़ों से कट जाएगा। इस प्रकार, **परंपरा संस्कृति की निरंतरता को सुनिश्चित करती है।**

दूसरी ओर, संस्कृति परंपरा को केवल संरक्षित ही नहीं रखती, बल्कि उसे **नए अर्थ और संदर्भ** भी प्रदान करती है। प्रत्येक युग में संस्कृति अपने समय की आवश्यकताओं के अनुसार परंपरा की पुनर्व्याख्या करती है और उसे नए रूप में अभिव्यक्त करती है। इस प्रकार, परंपरा और संस्कृति के बीच एक **गतिशील संबंध** स्थापित होता है, जिसमें एक ओर निरंतरता है, तो दूसरी ओर परिवर्तन की प्रक्रिया भी सक्रिय रहती है।

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि विद्यानिवास मिश्र इन दोनों के संबंध को किसी प्रकार के द्वंद्व के रूप में नहीं देखते। उनके अनुसार, परंपरा और संस्कृति के बीच संघर्ष नहीं, बल्कि **समन्वय का संबंध** है। यदि परंपरा जीवंत और परिवर्तनशील बनी रहती है, तो वह संस्कृति के विकास में सहायक होती है किंतु यदि वह जड़ हो जाती है, तो संस्कृति के लिए बाधा भी बन सकती है। इस प्रकार, उनके निबंधों में इन दोनों के संबंध को **संतुलन और सामंजस्य** के आधार पर समझा गया है।

इसके साथ ही, यह भी स्पष्ट होता है कि परंपरा और संस्कृति का यह संबंध केवल सामाजिक स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के आंतरिक जीवन को भी प्रभावित करता है। परंपरा के माध्यम से व्यक्ति अपने अतीत से जुड़ता है, जबकि संस्कृति के माध्यम से वह अपने वर्तमान को अर्थ देता है। इस प्रकार, ये दोनों मिलकर व्यक्ति के **व्यक्तित्व और जीवन–दर्शन** का निर्माण करते हैं।

अंततः यह कहा जा सकता है कि विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में परंपरा और संस्कृति का संबंध **एक जीवंत, संतुलित और परस्पर पूरक प्रक्रिया** के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह संबंध न केवल समाज की सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखता है, बल्कि उसे समय के साथ विकसित होने की भी क्षमता प्रदान करता है।

परंपरा और संस्कृति के पारस्परिक संबंध को यदि और सूक्ष्मता से देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि यह संबंध केवल एकतरफा नहीं है, बल्कि दोनों के बीच **निरंतर अंतःक्रिया** चलती रहती है। परंपरा जहाँ संस्कृति को आधार प्रदान करती है, वहीं संस्कृति परंपरा को जीवंत बनाए रखने का कार्य करती है। यदि परंपरा को संस्कृति से अलग कर दिया जाए, तो वह केवल अतीत की स्मृति बनकर रह जाती है और यदि संस्कृति को परंपरा से अलग कर दिया जाए, तो वह अपनी जड़ों से कटकर सतही और अस्थिर हो जाती है। इस प्रकार, **दोनों का अस्तित्व एक–दूसरे पर निर्भर** है।

विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में यह संबंध विशेष रूप से **लोकजीवन के उदाहरणों** के माध्यम से स्पष्ट होता है। लोकपरंपराएँ–जैसे त्योहार, रीति–रिवाज, लोकगीत और सामाजिक व्यवहार–संस्कृति के ऐसे जीवंत रूप हैं, जिनमें परंपरा निरंतर प्रवाहित होती रहती है। प्रत्येक पीढ़ी इन परंपराओं को अपने अनुभवों और आवश्यकताओं के अनुसार नया रूप देती है, जिससे वे समय के साथ प्रासंगिक बनी रहती है। इस प्रकार, संस्कृति परंपरा को केवल संरक्षित ही नहीं करती, बल्कि **उसका पुनःसृजन** भी करती है।

यहाँ यह भी महत्वपूर्ण है कि यह संबंध केवल संरक्षण और परिवर्तन तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें **चयन और पुनर्मूल्यांकन की प्रक्रिया** भी शामिल होती है। समाज प्रत्येक युग में यह तय करता है कि परंपरा के कौन–से तत्त्व उपयोगी और प्रासंगिक हैं, और कौन–से ऐसे हैं जिन्हें परिवर्तित या त्यागने की आवश्यकता है। इस प्रकार, संस्कृति एक प्रकार की **छननी** का कार्य करती है, जिसके माध्यम से परंपरा का पुनर्गठन होता है। यह प्रक्रिया परंपरा को जड़ होने से बचाती है और उसे जीवंत बनाए रखती है।

इसके अतिरिक्त, यह भी देखा जा सकता है कि परंपरा और संस्कृति का यह संबंध एक प्रकार का **संतुलन** बनाए रखने का प्रयास करता है। एक ओर परंपरा समाज को स्थिरता और निरंतरता प्रदान करती है, वहीं दूसरी ओर संस्कृति उसमें नवीनता और परिवर्तन का संचार करती है। यदि केवल परंपरा ही प्रभावी हो, तो समाज जड़ और गतिहीन हो जाएगा और यदि केवल परिवर्तन ही प्रमुख हो, तो समाज अपनी पहचान खो सकता है। इस प्रकार, इन दोनों का संतुलन ही समाज के **स्वस्थ विकास** के लिए आवश्यक है।

यह संबंध व्यक्ति के स्तर पर भी उतना ही महत्वपूर्ण है। व्यक्ति परंपरा के माध्यम से अपने अतीत और अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ता है, जिससे उसे एक पहचान और स्थिरता का अनुभव होता है। वहीं, संस्कृति के माध्यम से वह अपने वर्तमान जीवन को अभिव्यक्त करता है और नई परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को ढालता है। इस प्रकार, व्यक्ति का **व्यक्तित्व भी इन दोनों के संतुलन से निर्मित** होता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में परंपरा और संस्कृति का संबंध **एक गतिशील, बहुआयामी और सृजनात्मक प्रक्रिया** के रूप में उभरता है। यह केवल अतीत और वर्तमान के बीच का संबंध नहीं है, बल्कि एक ऐसी निरंतर यात्रा है, जिसमें समाज अपने अनुभवों के आधार पर स्वयं को निरंतर पुनर्गठित करता रहता है।

विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में सांस्कृतिक दृष्टि और समाज

विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में संस्कृति का स्वर केवल एक सैद्धांतिक या दार्शनिक अवधारणा के रूप में नहीं, बल्कि समाज के **जीवंत अनुभव** के रूप में उभरता है। उनके लिए संस्कृति और समाज परस्पर अविभाज्य हैं। संस्कृति समाज को दिशा देती है, और समाज संस्कृति को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार, उनके निबंधों में सांस्कृतिक दृष्टि का विकास सामाजिक जीवन के विविध आयामों के साथ गहराई से जुड़ा हुआ दिखाई देता है।

उनकी दृष्टि में समाज केवल व्यक्तियों का समूह नहीं, बल्कि एक **जीवंत संरचना** है, जिसमें परंपराएँ, मान्यताएँ, संबंध और व्यवहार सभी मिलकर एक सांस्कृतिक परिवेश का निर्माण करते हैं। इस परिवेश में संस्कृति केवल बाहरी रूप में नहीं दिखाई देती, बल्कि वह व्यक्ति के व्यवहार, उसकी भाषा, उसके आचरण

और उसके संबंधों में भी प्रकट होती है। इस प्रकार, संस्कृति समाज के प्रत्येक स्तर पर सक्रिय रहती है और उसे एक विशिष्ट पहचान प्रदान करती है।

विशेष रूप से यह देखा जा सकता है कि विद्यानिवास मिश्र समाज को केवल आधुनिकता की दृष्टि से नहीं देखते, बल्कि उसे उसकी **परंपरागत जड़ों** से जोड़कर समझने का प्रयास करते हैं। उनके निबंधों में ग्राम्य जीवन, लोकाचार, पारिवारिक संबंध और सामाजिक व्यवहार ये सभी ऐसे तत्व हैं, जिनके माध्यम से सांस्कृतिक चेतना का सजीव चित्रण किया गया है। वे यह स्पष्ट करते हैं कि वास्तविक संस्कृति का स्वर इन्हीं सहज और प्राकृतिक रूपों में सबसे अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

समाज और संस्कृति के संबंध को यदि परिवर्तनशील परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में यह संबंध स्थिर नहीं है, बल्कि **निरंतर परिवर्तित होने वाली प्रक्रिया** के रूप में उपस्थित है। वे यह स्वीकार करते हैं कि समय के साथ समाज में नए विचार, नई जीवन–शैलियाँ और नई आवश्यकताएँ उत्पन्न होती हैं, जिनका प्रभाव संस्कृति पर भी पड़ता है। इस प्रकार, संस्कृति केवल परंपरा का संरक्षण नहीं करती, बल्कि वह समाज में हो रहे परिवर्तनों के साथ स्वयं को समायोजित भी करती है।

इस परिवर्तनशीलता के संदर्भ में आधुनिकता का प्रभाव विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आधुनिक जीवन की गति, तकनीकी विकास और भौतिकता की बढ़ती प्रवृत्ति ने समाज के पारंपरिक ढाँचे को अनेक स्तरों पर प्रभावित किया है। विद्यानिवास मिश्र इस परिवर्तन को पूर्णतः नकारते नहीं हैं, किंतु वे यह संकेत अवश्य करते हैं कि यदि आधुनिकता संस्कृति के मूल्यों से कटकर आगे बढ़ेगी, तो वह समाज में **असंतुलन** उत्पन्न कर सकती है। इस प्रकार, वे आधुनिकता को स्वीकार करने के साथ–साथ उसके संतुलित और विवेकपूर्ण उपयोग की आवश्यकता पर बल देते हैं।

यहाँ यह भी देखा जा सकता है कि समाज में परिवर्तन के साथ–साथ संघर्ष की स्थितियाँ भी उत्पन्न होती हैं। परंपरागत मूल्य और आधुनिक विचार अनेक बार एक–दूसरे के विपरीत खड़े दिखाई देते हैं, जिससे समाज में एक प्रकार का द्वंद्व उत्पन्न हो जाता है। विद्यानिवास मिश्र इस द्वंद्व को स्वाभाविक मानते हैं और इसे विकास की प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग मानते हैं। उनके अनुसार, यह संघर्ष ही अंततः एक नए संतुलन की स्थापना की दिशा में मार्ग प्रशस्त करता है।

इस संदर्भ में उनकी सांस्कृतिक दृष्टि का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे समाज में **संतुलन और समन्वय** की स्थापना पर विशेष बल देते हैं। वे यह स्पष्ट करते हैं कि न तो परंपरा को पूरी तरह त्यागा जा सकता है और न ही आधुनिकता को अनदेखा किया जा सकता है। आवश्यक यह है कि दोनों के बीच एक ऐसा संबंध स्थापित किया जाए, जो समाज को स्थिरता भी प्रदान करे और विकास की दिशा में भी अग्रसर करे।

इसके साथ ही, यह भी महत्वपूर्ण है कि वे समाज में **मानवीय मूल्यों के क्षरण** को एक गंभीर समस्या के रूप में देखते हैं। भौतिक प्रगति के साथ–साथ यदि संवेदनशीलता, सहानुभूति और नैतिकता का ह्रास होता है, तो समाज का संतुलन बिगड़ सकता है। इस दृष्टि से वे संस्कृति को एक ऐसी शक्ति के रूप में देखते हैं, जो इन मूल्यों को पुनर्स्थापित कर सकती है और समाज को अधिक मानवीय बना सकती है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में सांस्कृतिक दृष्टि और समाज का संबंध एक **गहन, संतुलित और मानवीय परिप्रेक्ष्य** में प्रस्तुत किया गया है। यह संबंध न केवल समाज की संरचना को समझने में सहायक है, बल्कि यह भी स्पष्ट करता है कि किसी भी समाज की वास्तविक प्रगति उसके सांस्कृतिक मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं पर निर्भर करती है। इसी कारण उनका निबंध साहित्य आज भी उतना ही प्रासंगिक और प्रेरणादायक प्रतीत होता है।

उपसंहार

विद्यानिवास मिश्र के निबंध साहित्य का समग्र अवलोकन यह स्पष्ट करता है कि उनके चिंतन का मूल आधार **भारतीय परंपरा और संस्कृति की गहन समझ** तथा उसके प्रति आत्मीय जुड़ाव में निहित है। उनके निबंधों में परंपरा और संस्कृति केवल अतीत की स्मृतियाँ नहीं हैं, बल्कि वे वर्तमान जीवन की सक्रिय और प्रेरक शक्तियाँ हैं, जो मनुष्य को उसके अस्तित्व का बोध कराती हैं और उसे जीवन के व्यापक संदर्भ से जोड़ती हैं। इस प्रकार, उनका लेखन एक ऐसी सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है, जो समय के साथ निरंतर विकसित होती रहती है।

उनकी दृष्टि में परंपरा और संस्कृति का संबंध अत्यंत सजीव और संतुलित है, जहाँ एक ओर अतीत की निरंतरता बनी रहती है, तो दूसरी ओर वर्तमान की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन की प्रक्रिया भी

चलती रहती है। वे परंपरा को जड़ता के रूप में नहीं, बल्कि **एक सृजनात्मक शक्ति** के रूप में देखते हैं, जो संस्कृति के माध्यम से नए रूपों में अभिव्यक्त होती रहती है। इस प्रकार, उनका चिंतन परंपरा और आधुनिकता के बीच एक सार्थक संवाद स्थापित करता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि उनके निबंधों में संस्कृति का स्वर केवल सामाजिक या ऐतिहासिक नहीं, बल्कि **गहरे मानवीय और नैतिक आधार** पर स्थापित है। वे संस्कृति को मनुष्य के आंतरिक विकास से जोड़ते हैं और यह स्पष्ट करते हैं कि उसका वास्तविक उद्देश्य संवेदनशीलता, सहिष्णुता और सामंजस्य जैसे मूल्यों का विकास करना है। इस दृष्टि से उनका लेखन केवल बौद्धिक विमर्श नहीं, बल्कि एक मानवीय आग्रह भी है, जो समाज को अधिक संतुलित और मानवीय बनाने की दिशा में प्रेरित करता है।

फिर भी, उनके विचारों में कहीं–कहीं एक प्रकार का आदर्शवाद दिखाई देता है, जो सामाजिक यथार्थ की कुछ जटिलताओं और अंतर्विरोधों को अपेक्षाकृत कम स्थान देता है। किंतु यह उनकी दृष्टि की सीमा कम और उनके उद्देश्य की स्पष्टता अधिक प्रतीत होती है, क्योंकि वे समाज को विघटन की दिशा में नहीं, बल्कि **समन्वय और संतुलन** की दिशा में ले जाना चाहते हैं। इस प्रकार, उनका लेखन आलोचना के साथ–साथ निर्माण की भावना से भी ओत–प्रोत है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि विद्यानिवास मिश्र के निबंध साहित्य में परंपरा और संस्कृति का स्वर एक **जीवंत, गतिशील और बहुआयामी प्रक्रिया** के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह केवल अतीत का गौरवगान नहीं, बल्कि वर्तमान की समझ और भविष्य की दिशा का निर्धारण भी है। इसी कारण उनका निबंध साहित्य न केवल अपने समय में, बल्कि आज के परिवर्तित सामाजिक संदर्भ में भी उतना ही प्रासंगिक और प्रेरणादायक बना हुआ है।

संदर्श ग्रन्थ सूची

1. विद्यानिवास मिश्र के निबंध, विद्यानिवास मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. विद्यानिवास मिश्र रचनावली, विद्यानिवास मिश्र।
3. विद्यानिवास मिश्र और उनका साहित्य, नामवर सिंह।
4. आधुनिक हिन्दी निबंध, डॉ. नगेन्द्र।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल।
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास, हजारी प्रसाद द्विवेदी।
7. भारतीय संस्कृति और साहित्य, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी।
8. संस्कृति और परम्परा, विश्वनाथ त्रिपाठी।
9. हिन्दी निबंध साहित्य का विकास, नामवर सिंह।
10. विद्यानिवास मिश्र के विचार, डॉ. नगेन्द्र।

गिरिजा कुमार माथुर की वैयक्तिक काव्यधारा की अभिव्यक्ति

ऋतुजा सिंह*

माथुर जी **'नयी कविता'** के अत्यंत समर्थ आधार स्तंभ है। वे सतत विकासशील कवि है। उनके काव्य को किसी एक वाद की सीमा में नहीं घेरा जा सकता। युगीन परिवेश को समसामयिक प्रभाव को ग्रहण करता हुआ भी उनका काव्य उनके व्यक्तिगत जीवन की विविध परिस्थितियों को विशेष रूप से प्रतिबिंबित करता रहा है। माथुर की काव्य प्रतिभा समसामयिक काव्य-परंपराओं से पूर्णतः बंध तो न सकी परंतु प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित अवश्य हुई। उनका युग परिवर्तन शील था- अनेकानेक वाद एवं काव्य परम्पराए उभर रही थी, तिरोहित हो रही थी उनमें छायावाद, वैयक्तिक काव्यधारा, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तथा नयी कविता रही। ये समस्त काव्य धाराओं ने माथुर जी की काव्य-चेतना को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है।1.(आज के लोकप्रिय हिंदी कवि गिरिजाकुमार माथुर, भूमिका, डॉ. नागेंद्र पृष्ठ 28) माथुर जी के काव्य में जहां जीवन के सौंदर्य पक्ष के दर्शन होते हैं वही जीवन की कटुता व निराशा की भी सफल अभिव्यक्ति हुई है। उनके प्रारंभिक काव्य संग्रह **'मंजीर'** में जहां प्रेम,सौंदर्य और प्रणयजन्य विषाद का चित्रण है वहां **'नाश और निर्माण', 'धूप के धान'** आदि कृतियों में मध्यवर्गीय अंतरद्वन्द्व तथा मानवतावादी विचारों का प्रधान्य है। **शीला पंख चमकीले** तथा **जो बंध नहीं सका** में उनके चिंतन का प्रौढ़ रूप लक्षित होता है जिसमें नवीन वैज्ञानिक चेतना को सफल अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। कहने का अभिप्राय है कि उनके काव्य में सतत विकासशीलता की सहज प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। उनके काव्य में छायावाद का रंगीन रोमांस बच्चन आदि वैयक्तिक कवियों की निश्चल आत्मभिव्यक्ति प्रगतिवाद का सामाजिक यथार्थ पर नई कविता का नवीन भौतिक वैज्ञानिक चेतना विद्यमान है। माथुर जी की वैयक्तिक काव्य धाराओं कि चर्चा कि जाये तो इनके रचनाओं में संयोग के क्षणों कि रंगीन भावनाओं का ही नहीं, विरह कि मार्मिक पीड़ा का भी चित्रण है। वैयक्तिक दुःखो, निराशा, असफलता तथा घुटन का भी उन्होंने सफलता से चित्रण किया है। इस छोटी सी भावना को भी यदि देखे तो इनकी पंक्ति यथा-

'प्यार बढ़ा निष्ठुर था मेरा
कोटि दीप जलते थे मन में
कितने मरू-तपते यौवन में
रस बरसाने वाले आकर
विष ही छोड़ गए जीवन में 2.(मंजीर, माथुर, पृ. 46)

वैयक्तिक वेदना और निराशा को व्यक्त करने वाली उनकी प्रमुख कविताएं रही हैं- **'दूर की आशा', 'रूठ गए वरदान सभी', 'विदा समय', 'मैं कैसे आनंद मनाऊं'।**

माथुर जी कि आगे जब उनकी कविताओं को विभिन्न धाराओं को देखते हैं तो पाते हैं कि उनकी कविताओं के प्रादुर्भाव के अनेक कारण हैं। राजनीतिक,सामाजिक तथा दार्शनिक कारणों ने इससे प्रभावित तो किया लेकिन तत्कालीन युग में व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा प्रमुख थी। दर्शन, राजनीति, अर्थव्यवस्था तथा समाज-व्यवस्था सभी में व्यक्तिवाद का युग था। अनेक स्वदेशी- विदेशी प्रभाव के कारण मानव-चेतना अपनी सत्ता के प्रति जागरूक हो चुकी थी। और इसी आत्मतत्व की प्रधानता को माथुर जी ने अपनी कविताओं में दिखाया है कि मानव के ऐहिक संघर्ष की विजय और पराजय की अपनी एक महत्वता है। जब हम माथुर जी की कविताओं की अभिव्यक्ति का आधार देखते हैं तो वह मूर्त और मांसल प्रतीत होते हैं। वे जीवन की मधुर भावनाओं की

* शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय

अभिव्यक्ति पूर्णता के साथ करते हैं। उनकी श्रृंगारिक चेतना में शरीर का एक आवश्यक रूप भी समाविष्ट होता है। उनके प्रणय का आलंबन कल्पनागम्य नहीं है बल्कि वह इसी धरती के मूर्त रूप से करते हैं। उनकी कुछ कविताएं यथा '**अभी तो झूम रही है रात', 'चूड़ी का टुकड़ा', 'रेडियम कि छाया', 'देह कि आवाज'** आदि इस दृष्टि से महत्वपूर्ण दिखाई पड़ती है। उदाहरण तौर पर यदि देखे तो '**मिलन'** का चित्रण सांकेतिक रूप में देखने को मिलता है -जैसे -

'बड़ा काजल आजा है आज
भारी आँखों में हल्की लाज
तुम्हारे ही महलों में प्राण
जला क्या दीपक सारी रात
निशा का सा पलकों पर चिन्ह
जागती नींद नयन में प्रात' 3. (**मंजीर, गिरिजाकुमार माथुर, पृ. 66**)

उपर्युक्त पंक्ति के माध्यम से माथुर जी ने प्रेमी के व्यक्तिगत मिलन कि अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से सांकेतिक रूप से कि है उसका नग्न रूप में चित्रण नहीं किया है। उन्होंने किस प्रकार आँखों में लाज, पलकों पर निशा का सा चिन्ह, दीपक का सारी रात जलना, ठीक से रात को सो न पाना और प्रभात का रोज से जल्दी होना मिलन वेला कि ओर स्पष्ट संकेत किया है। रूप और रस के मांसल स्पर्श से पूर्ण परिषकृत चित्रों को ध्यान में रखते हुए **डॉ. नगेन्द्र** ने कहा भी है कि - "यह श्रृंगार न तो भूखे तन और भूखे मन का आहार है और न किसी अदृश्य आलम्बन के साथ कल्पना-विहार है। कवि ने जीवन कि मधुर भावना को बड़े हलके हाथों से, किन्तु पूरी गहराई के साथ, बिम्बीत करने का सफल प्रयत्न किया है"। **4(आज के लोक प्रिय हिंदी कवि -डॉ. नगेन्द्र पृष्ठ 28)**

इसी संदर्भ में **डॉ. रांगेय राघव** भी कहते है -" **गिरिजा कुमार माथुर, सजीली सुषमा का कवि, जो कभी-कभी बहुत मीठी कल्पना करता है, प्रिय के प्रति बहुत अनुरक्त रहता है। उसकी प्रिया कविप्रिया है"। 5.(आधुनिक हिंदी कविता में प्रेम और श्रृंगार -डॉ. रांगेय राघव पृष्ठ 30**)

माथुर जी की वैयक्तिकता में जब रोमानियत की भी ज़ब बात की जाती है अगर तो उसमें देखा जाता है कि इनकी सभी रोमानी कविताओं में शरीर आवश्यक रूप से निहित है फिर वे कविताएं चाहे '**मंजीर**' की हो, '**नाश और निर्माण**' की या '**धूप के धान**' की ही क्यों न हो उसमें छायावादी वायवीयता व काल्पनिकता का सर्वथा अभाव है। उन्होंने अपना प्रणय निवेदन किसी अलौकिक आलम्बन के प्रति नहीं किया है, वह वास्तव में इस स्थूल संसार का ही है। 'धूप के धान' कि एक कविता 'देह कि आवाज' में तो कवि ने स्पष्ट रूप से देह कि महत्ता स्वीकार कि है, जिसमें कवि का मांसल व भोगवादी दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। मन जो है वह शरीर से पूछता है कि 'चिकने मांसल तमका', 'नुकिली रंगीन नजर का', 'चंद्रानन का', 'हाड़ चाम का' इतना महत्व क्यों है? तन के प्रति इतना आकर्षण क्यों है? इसका उत्तर देह इस प्रकार देती है-

' ये बुद्धि, ज्ञान, आत्मा कि सभी अदितियाँ
है देह-तेज कि ज्योतित भावाकृतियाँ
खिलता है देह-बीज से
पंकज मन का
है देह भोगहित सृष्टि मधुमती के वर
लालिम चरणों में बिछी प्रकृति कि केसर
यह नील श्याम मानव जगती है मनहर
तन रचना में मानव तन सबसे सुंदर।'

6.(धूप के धान, गिरिजाकुमार माथुर, पृष्ठ 107)

कवि देह का पूर्ण रूप से समर्थन करता है। संसार कि नव रचना इसी देह के कारण होती है। देह तृष्णा व अशांति का कारण न होकर मानवीय संश्रीति के विकास में योग देती है।

इन सभी रोमानी दृष्टिकोण को कविताओं के परिप्रेक्ष्य में रखते हुए जब हम माथुर के नारी दृष्टिकोण को समझते है तो सबसे भिन्न यह दृष्टिकोण सामने आता है कि नारी के प्रति इनका दृष्टिकोण छायावाद से नितांत भिन्न है। नारी के रूप चित्रण में इनका स्वच्छ दृष्टिकोण है। बहुत हल्के रंग और रेखाओ द्वारा उसके रूप को उभारने का प्रयास किया गया है। यह छायावाद के पूज्य और आदर्शपरक दृष्टिकोण से भिन्न है। उसमें कवि की प्रेम-भावना व भोगवादी प्रवृत्ति का प्राधान्य है। नारी के रूप और सौंदर्य के चित्रण में नवीन अप्रस्तुतों की योजना की गई है -

'देह कुसुमित मृणाल
जैसे गेहूं की बाल
जैसे उच कांहे बोरों से
रोमिल रसाल
किशमिशि चंद्रलट कसम से उर प्रियाल' 7.(शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ-53)

इस प्रकार नवीन उपमानों को चुनते हुए नारी के संयोग मिलन व विरह दोनों की सांकेतिक रूप से अभिव्यक्ति करते हुए नारी के वैयक्तिक अनुभूति का चित्रण प्रत्यक्ष रूप से कर डालते हैं। उनमें छायावादी आदर्शो का अभाव रखते हैं तो वही प्रगतिवादी स्थूल भौतिकता का, अश्लील वासना का भी सर्वथा अभाव ही है इसके बावजूद भी नारी के हृदय की भावना को अपनी कविता में रू-ब-रू कराते हैं। हां लेकिन ऐसा पूर्णतः नहीं कहा जा सकता की छायावाद का प्रभाव ही उनके नारी दृष्टिकोण पर नहीं पड़ता है। वे सौंदर्य-चित्रण में जिस रूप और आभा का समन्वय में कवि ने किया है उस पर स्पष्टतः छायावाद का प्रभाव लक्षित होता है। यहां तक कि उसी प्रभाव के कारण वह रूप-चित्रण में प्रकृति का भी रूप आरोपित करते हैं। उदाहरण स्वरूप एक कविता की पंक्ति में यह देखने को भी मिलता है कि- जब प्रिय अपने प्रियतम के सुधि में लीन है तब उसे हेमंत की निस्तब्ध रात अपने कंत से लिपट कर सोई हुई कामिनी के समान लगती है- यथा

'कामिनी-सी अब लिपट कर सो गई है
रात यह हेमंत की दीप-तन बन अब उष्म करने
सेज अपने कंत की'। 8.**(धूप के धान, माथुर, पृ. 45)**

इस प्रकार अनेक रूप- सौंदर्य की आभा माथुर जी अलग-अलग रूपों में दिखाते हैं और सबसे महत्वपूर्ण उनका दृष्टिकोण यह भी रहा कि वे नारी के उसी स्वरूप को अंगीकार करते हैं जो जीवन में उन्नयन की प्रेरणा दे सके। जीवन के विशाल कर्म क्षेत्र में अग्रसर होने की प्रेरणा दे सके और प्रेयसी का प्रेम निष्क्रियता का परिचायक न होकर प्रेरणादायक होता है ऐसा मानते हैं। इस तरह कहते हैं कि वह जीवन की निराशा और दुखों को दूर करने वाली नारी है। नारी को शक्ति का आधार मानते हुए, मृत्यु से संघर्ष करने की प्रेरणा देने वाली शक्ति का स्वरूप कहते हैं जिसमें लिखते हैं-

'शक्ति दो मुझको, सलोनी, प्यार से
लड़ सकूं मैं मौत की ललकार से' 9.**(धूप के धान, माथुर, पृ.63)**

अतः माथुर जी की नारी के प्रति वैयक्तिक दृष्टिकोण को समझते हैं तो यहां **'नारी तुम केवल श्रद्धा हो'** वाला रूप प्रधान नहीं बल्कि उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से वह जीवन की विरोधी परिस्थितियों से संघर्ष

की ओर उन्मुख करने वाली शक्ति के प्रतीक रूप में चित्रण करते हैं। उपर्युक्त काव्यधाराओं के साथ-साथ माथुर के काव्य में जहां जीवन के प्रति तीव्र आसक्ति तथा संयोगजन्य उल्लास का चित्रण हुआ वही प्रणय जन्य विषाद का भी मार्मिक चित्रण किया गया । पीड़ा का स्वर उनकी प्रारंभिक रचनाओं (**'मंजीर', 'नाश और निर्माण', 'धूप के धान'**) में विशेष रूप से देखा जा सकता है। इनके काव्य में जहां संयोग के मादक, मांसल और स्थूल चित्र मिलते हैं वही पीड़ा के स्वरों को भी कलात्मकता के साथ मुखरित किया गया। विरह वेदना की दृष्टि प्रारंभिक रचनाओं में जीवन-संघर्ष की प्रेरणा नहीं देती बल्कि समाज से इतर अपने पीड़ा में लीन रहते मालूम पड़ती है। लेकिन प्रेम के क्षेत्र में आने वाली कटुताओं से जूझते हुए कवि ने यह अनुभूति कर लिया की मन के कोमल भाव अधिक मूल्यवान होते हैं, किंतु वे भाव मनुष्य को अकर्मण्य बना देते हैं। वे असफलता पर केवल आंसू न बहाकर जीवन के संघर्षों से जूझते हुए अप्राप्यता को भूल जाने की सलाह देते हैं और यहां तक आते-आते उनकी दृष्टि केवल वर्तमान पर न रहकर सुनहरे भविष्य की ओर बढ़ना शुरू कर देती है इसलिए वह लिखते भी है कि-

'जो न मिला भूल उसे
कर तू भविष्य वरण
छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन'। 10.**(धूप के धान, गिरिजाकुमार माथुर, पृ. 102)**

इस तरह इस कातर दुख से उठकर कवि मन के संघर्षों से समाज के संघर्ष को अधिक महत्वपूर्ण बताते हैं और कर्मशील रहने की प्रेरणा देते हुए अपनी समस्याओं से सिर्फ घिरा न रहकर समाज और देश के विषय को भी रेखांकित करते हैं.। इसलिए आगे की रचनाओं में अपनी कविता '**प्रौण-रोमांस**' में लिखते हैं-

'हमको भी है ज्ञान विरह का और मिलन का
यह मत समझो बर्फ बन गया हृदय हमारा
पर हम तुमसे बहुत भिन्न है
हम मन में सुधि रखकर भी
है कर्मशील
है संघर्षों में डूबे भले
हम डटकर जीवन से युद्ध कर रहे प्रतिफल
आज हमारे समझ और समस्याएं हैं
प्रश्न दूसरे
घर के, बाहर के, समाज के
मुल्क और दीगर मुल्कों के
अब हमको सुधि की पीड़ा है नहीं सताती। 11.**(धूप के धान पृष्ठ 25)**

ऐसे में माथुर जी ऐसा मानते हैं कि विरह की पीड़ा के पीछे एक रहस्य छिपा है- शरीर की भूख। इसी कारण मनुष्य को प्रिया से बिछड़ने पर दुख की अनुभूति होती है, किंतु जब मन के ये विचार (खोटे सिक्के) समाप्त हो जाएंगे तभी प्रेम के आदर्शों की सच्चाई का पता लग सकता है। अर्थात प्रिय का सानिध्य ही प्रेम नहीं है बल्कि प्रेम जीवन में अग्रसर होने की प्रेरणा देता है संघर्षों से जूझने को ललकारता है। यह विरह भावना में क्रमशः विकास दृष्टिगत होता है। अतः यह प्रवृत्ति माथुर जी को उन आशावादी कवियों में से एक बताती है जो प्रेम का प्रतियुत्तर न पाने पर एकदम हताश न हो जाते बल्कि पूर्व मिलन की मादक स्मृतियां ही उन्हें निरंतर कर्मशील रहने की प्रेरणा देती है। इनके रोमानी काव्य का मूल मंत्र संभवतः यही प्रतीत होता है। '**वियोगी, मिलन याद में दुख भुला चल**'। इस कर्मशील आशावादिता के संदर्भ में माथुर जी ने आशा और निराशा

दोनों के परिप्रेक्ष्य में अपने '**नाश और निर्माण**' कृति में दो भागों में लिखते हैं कि- 'नाश' में निराशा, पराजय, उदासी तथा घुटन आदि भावों को अभिव्यक्ति मिलती है और निर्माण पक्ष में आशा और उल्लास का चित्रण हुआ है। अपने वक्तव्य में बताते हैं कि- "**विकास का यह पथ पहले और अंतिम कविता की दूरों में स्पष्ट हो जाएगा। इन दोनों कविताओं के बीच दो युगों का अंतर है एक अंधकार का दूसरा प्रकाश का"। 12.(नाश और निर्माण-वक्तव्य-गिरिजाकुमार माथुर)**।

निष्कर्ष - इस प्रकार माथुर के काव्य में यद्यपि निराशा की व्यापक अभिव्यक्ति हुई भी किंतु निराशा का स्वर उनके काव्य का प्रधान स्वर नहीं रहा। इनके काव्य में मुख्यतः आस्था और विश्वास के स्वरों की अभिव्यक्ति हुई है। ' **हम होंगे कामयाब'** जैसी कविता इनको प्रेरणादायक व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित करती है और इनकी कविताएं मानवता और एकता का संदेश देती है। इनकी वैयक्तिक काव्यधारा में कवि के अपने भाव, अनुभव और संवेदनाएं प्रमुख रूप से दिखाई देती है। उनकी कविताओं में आशा, विश्वास, मानवता और भविष्य के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण मिलता है। यह आशावादी कवि है जो जीवन के संघर्षों से जूझने में ही विश्वास रखते हैं। अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि माथुर जी की रचनाओं में प्रधानता निश्चल आत्मा अभिव्यक्ति की है। वैयक्तिक सुख-दुखात्मक अनुभूतियों का इन्होंने सूक्ष्मता से चित्रण किया है।अपने वैयक्तिक अनुभूतियों के माध्यम से ही कवि क्रमशः सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ के साथ ही प्रणय को भी एक सकारात्मक अभिव्यक्ति देने का प्रयास करते हुए अपने व्यक्तित्व की एक अप्रतिम छवि प्रस्तुत करते हैं।

संदर्भ-सूची

1. **(आज के लोकप्रिय हिंदी कवि गिरिजाकुमार माथुर, भूमिका, डॉ. नागेंद्र पृष्ठ 28**
2. **(मंजीर, माथुर, पृ. 46)**
3. **(मंजीर, गिरिजाकुमार माथुर, पृ. 66)**
4. **आज के लोक प्रिय हिंदी कवि -डॉ. नगेन्द्र पृष्ठ 28)**
5. **(आधुनिक हिंदी कविता में प्रेम और श्रृंगार -डॉ. रांगेय राघव पृष्ठ 30)**
6. **धूप के धान, गिरिजाकुमार माथुर, पृष्ठ 107)**
7. **(शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ-53)**
8. **(धूप के धान, माथुर, पृ. 45)**
9. **(धूप के धान, माथुर, पृ.63)**
10. **(धूप के धान, गिरिजाकुमार माथुर, पृ. 102)**
11. **(धूप के धान पृष्ठ 25)**

आर्थिक परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा

रितिक राजपूत*

भूमिका (Introduction):

आर्थिक संदर्भ में हिंदी भाषा का महत्व

- तकनीकी युग में हिंदी का स्थान
- हिंदी भाषा और रोजगार
- प्रशासन व विभिन्न राजनैतिक नीतियों में हिंदी का प्रयोग
- वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा का आर्थिक योगदान

हिंदी भाषा न केवल भारत की राजभाषा है, बल्कि करोड़ों भारतीयों की मातृभाषा भी है। यह भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक चेतना का भी प्रतिबिंब है। जैसे-जैसे भारत की अर्थव्यवस्था नई ऊँचाइयों को छू रही है, वैसे-वैसे भाषा की भूमिका भी केवल संवाद से बढ़कर आर्थिक संसाधन के रूप में परिवर्तित हो रही है। वैश्वीकरण और डिजिटलीकरण के इस युग में, जब हर वर्ग को बाजार से जोड़ा जा रहा है, तब हिंदी भाषा की पहुँच और उपयोगिता को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता।

भारत की अर्थव्यवस्था विश्व की पांचवी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत विश्व में सातवें नंबर पर है जनसंख्या में भारत का स्थान दूसरा था , किंतु २०१३ से प्रथम स्थान पर है और केवल 2.4% क्षेत्रफल के साथ भारत विश्व की जनसंख्या के 17.76 भाग को शरण प्रदान करता है

सन् 1991 से भारत में आर्थिक प्रगति का स्तर लगातार बढ़ता रहा है जब से 'उदारीकरण' और आर्थिक सुधार की नीति लागू की गयी है तब से भारत आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभरकर आया है। 2017 में भारतीय अर्थव्यवस्था मानक मूल्यों के आधार पर विश्व की पांचवी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है अप्रैल 2014 में जारी रिपोर्ट में वर्ष 2011 के विश्लेषण में विश्व बैंक ने "क्रयशक्ति समानता" (परचेजिंग पावर पैरिटी) के आधार पर भारत को विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था घोषित किया गया। किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को बढ़ाने वाले बहुत से मानक होते है लेकिन इसमें भाषा का योगदान सर्वोपरी है एक सटीक स्वस्थ वक्तव्य किसी भी मुद्दे को अपनी तरफ मोड़ने के लिए काफी है।

इसी तरह से आर्थिक परिप्रेक्ष्य में हिंदी का अर्थ है आर्थिक दृष्टिकोण से या आर्थिक संदर्भ में हिंदी का प्रयोग करना । यह अर्थशास्त्र में, आर्थिक नीतियों के बारे में चर्चा करते समय या अर्थव्यवस्था की स्थिति को समझने के लिए हिंदी में संवाद करने के तरीके से संबंधित हो सकता है

यह शोध पत्र हिंदी भाषा के आर्थिक परिप्रेक्ष्य में योगदान, बढ़ती संभावनाओं और उससे जुड़ी चुनौतियों का समग्र विश्लेषण करता है। उद्देश्य यह है कि यह दिखाया जा सके कि हिंदी केवल एक साहित्यिक और सांस्कृतिक धरोहर नहीं, बल्कि आर्थिक विकास की प्रभावशाली शक्ति बन सकती है।

2. हिंदी भाषा का आर्थिक महत्त्व भारत एक बहुभाषी देश है, जहाँ भाषा न केवल सांस्कृतिक पहचान है, बल्कि आर्थिक गतिशीलता का भी आधार बनती जा रही है। हिंदी, भारत की सबसे व्यापक रूप से बोली और समझी जाने वाली भाषा है। जिसे भारतीय संविधान ने राजभाषा का दर्जा दिया है। हिंदीभाषी उपभोक्ता वर्ग देश के मध्यवर्ग और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में प्रमुख भूमिका निभा रहा है।

* शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
9634596279, ritikrajput2511@gmail.com

बाजार और उपभोक्तावाद में हिंदी की भूमिका के रूप में अगर देखें तो कंपनियाँ अब विज्ञापन हिंदी में बना रही हैं क्योंकि उन्हें पता है कि उपभोक्ताओं का एक बड़ा हिस्सा हिंदी भाषी है। जैसे -एफएमसीजी, मोबाइल कंपनियाँ, बैंक, और बीमा क्षेत्र के विज्ञापन अब "हिंग्लिश" या शुद्ध हिंदी में भी बनाए जा रहे हैं।

YouTube, Instagram, Facebook पर हिंदी में किए गए प्रचार अधिक प्रभावशाली हो रहे हैं क्योंकि ये आमजन से सीधे जुड़ते हैं। वर्तमान तकनीकी युगों में ग्रामीण और अर्ध-शहरी बाजार में हिंदी की शक्ति को देखा जाये तो ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों ने भारत की आर्थिक भागीदारी में निरंतर वृद्धि की है। यह क्षेत्र प्रायः हिंदी-प्रभावित होता है। यदि इन उपभोक्ताओं तक भाषा के माध्यम से पहुँचा जाए, तो व्यापार के नए द्वार खुल सकते हैं।

3. डिजिटल युग में हिंदी का उदय

डिजिटल क्रांति ने हिंदी को एक नई पहचान दी है। पहले जहाँ इंटरनेट पर अंग्रेज़ी का बोलबाला था, अब हिंदी इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या में विस्फोटक वृद्धि हो रही है।

एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में अंग्रेज़ी की तुलना में हिंदी इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 2021 में ही अधिक हो चुकी थी और अब समय के साथ यह संख्या निरंतर बढ़ती ता रही है। भारत जैसे देश में जहां कहा जाता हो कि 'कोस कोस पर बदले पानी चार कोस पर बानी' के बावजूद हिंदी भाषा ने सम्पूर्ण प्रभुत्व बनाये रखा हो वहां यह भाषा तकनीकीकरण से कैसे अछूत रह सकती है जैसे Google और अन्य टेक कंपनियाँ हिंदी को प्राथमिकता दे रही हैं। अब कीबोर्ड, सर्च, मैप्स, ट्रांसलेशन जैसी सेवाएँ हिंदी में उपलब्ध हैं।

हिंदी में डिजिटल कंटेंट की मांग समय के साथ लगातार बढ़ती जा रही है YouTube पर 60% से अधिक सबसे लोकप्रिय चैनल हिंदी में कंटेंट प्रस्तुत करते हैं।

हिंदी ब्लॉगिंग, पोडकास्टिंग, और न्यूज पोर्टल्स की संख्या में भारी वृद्धि हो रही है। जैसे 'ललनटोप' न्यूज चैनल हिंदी भाषा में खबरें प्रसारित करता है

हिंदी में डिजिटल सेवाओं का विस्तार लगातार बढ़ता जा रहा है जैसे ई-गवर्नेंस: सरकार की अधिकांश सेवाएँ अब हिंदी में उपलब्ध कराई जा रही हैं (PM-Kisan, CoWIN आदि)।

ई-कॉमर्स: Flipkart, Amazon जैसी कंपनियाँ अब हिंदी इंटरफ़ेस और सहायता प्रदान करती हैं।

4. हिंदी भाषा और रोजगार की संभावनाएँ

हिंदी अब केवल भाषा शिक्षण तक सीमित नहीं, बल्कि यह विभिन्न प्रकार के रोजगार और उद्यमिता के नए द्वार खोल रही है।यह भाषा न केवल भारत के भीतर बल्कि दुनिया भर में भी एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक और आर्थिक उपकरण के रूप में कार्य करती है। जैसे अनुवाद और भाषाई सेवाएँ अब हिंदी में - सरकारी दस्तावेज़ों, कानूनी कागज़ात, तकनीकी मैन्युअल्स, मेडिकल रिपोर्ट्स आदि के अनुवाद के लिए हिंदी अनुवादकों की भारी मांग है तो वहीं Freelancing प्लेटफॉर्म्स जैसे Upwork, Fiverr पर हिंदी ट्रांसलेशन की सैकड़ों परियोजनाएँ रोज़ आती हैं।

पत्रकारिता, मीडिया और विज्ञापन हिंदी अखबार, चैनल्स, वेबसाइट्स बड़ी संख्या में संवाददाताओं, कंटेंट राइटर्स और एंकरों को रोजगार दे रहे हैं।

सोशल मीडिया इंफ्लुएंसर अब हिंदी में व्लॉगिंग और ब्रांड प्रमोशन करके लाखों रुपये कमा रहे हैं। हिंदी शिक्षण और ऑनलाइन ट्यूटरिंग भी हिंदी भाषा के अन्तर्गत रोजगार प्रदान कर रहा है हिंदी को दूसरी भाषा के रूप में सिखाने की मांग विदेशों में भी है।

ऑनलाइन ट्यूटरिंग प्लेटफॉर्म्स जैसे Preply, iTalki पर हिंदी सिखाने वाले शिक्षकों की अच्छी खासी कमाई हो रही है।

साहित्य, स्वरोजगार और स्टार्टअप्स स्वयं के ब्लॉग, YouTube चैनल, ई-बुक्स, पॉडकास्ट आदि शुरू करके कई लोग हिंदी में आत्मनिर्भर बन रहे हैं।हिंदी में Apps, भाषायी सेवाएँ, लोकल सर्विस प्रोवाइडर्स और भाषाई AI स्टार्टअप्स की संभावनाएँ तेजी से बढ़ रही हैं।

5. नीति और प्रशासन में हिंदी का प्रयोग

सरकार ने कई पहलें की हैं ताकि हिंदी को प्रशासनिक, तकनीकी और व्यावसायिक स्तर पर बढ़ावा दिया जा सके:

राजभाषा नीति: केंद्र सरकार के अधिकांश विभागों में हिंदी को कार्य-भाषा के रूप में लागू किया गया है।

साहित्यिक और भाषायी पुरस्कार: हिंदी में कार्य करने वाले रचनाकारों और पत्रकारों को पुरस्कार और प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

राष्ट्रीय अनुवाद मिशन: इसका उद्देश्य है हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में तकनीकी और शैक्षणिक सामग्री का अनुवाद। फिर भी, नीति और क्रियान्वयन में बड़ा अंतर है। सरकारी कार्यालयों में अब भी अंग्रेज़ी का वर्चस्व देखा जाता है।

6.वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा का आर्थिक योगदान

हिंदी भाषा का प्रभाव केवल भारत तक सीमित नहीं है, बल्कि यह वैश्विक स्तर पर भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। दुनिया के कई हिस्सों में बसे प्रवासी भारतीयों और हिंदी प्रेमियों के कारण हिंदी का आर्थिक प्रभाव तेजी से बढ़ा है। इसके अलावा, वैश्विक ब्रांड्स, मीडिया संस्थान, और तकनीकी कंपनियाँ अब हिंदी को वैश्विक रणनीति का हिस्सा बना रही हैं।

प्रवासी भारतीय और हिंदी बाज़ार - अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, फिजी, सूरीनाम, मॉरीशस, दक्षिण अफ्रीका और खाड़ी देशों में लाखों हिंदीभाषी रहते हैं।ये समुदाय न केवल हिंदी भाषा से जुड़े रहते हैं, बल्कि हिंदी साहित्य, सिनेमा, संगीत और मीडिया की माँग को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बनाए रखते हैं।

प्रवासी भारतीयों के लिए हिंदी समाचार पोर्टल, रेडियो, टीवी चैनल और ऑनलाइन सेवाओं की बड़ी मांग है, जो वैश्विक बाजार में हिंदी का आर्थिक मूल्य बढ़ाते हैं।

अंतरराष्ट्रीय ब्रांड्स की हिंदी रणनीति भी सराहनीय है Netflix, Amazon Prime, Disney+ जैसी स्ट्रीमिंग सेवाओं ने हिंदी में कंटेंट का विस्तार किया है, क्योंकि हिंदी फिल्मों और सीरीज़ का वैश्विक दर्शक वर्ग काफी बड़ा है। इसके साथ ही विदेशी कंटेंट के हिंदी अनुवाद की भी बहुत मांग भारत में है। अंग्रेजी फिल्मों, कोरियन , चाईनीज, तुर्की आदि ड्रामों का हिंदी अनुवाद आदि आज के समय में रोजगार का माध्यम है ।

YouTube और Spotify जैसे प्लेटफॉर्म्स पर हिंदी म्यूजिक, पॉडकास्ट और शॉर्ट्स का वैश्विक उपभोग निरंतर बढ़ रहा है।

हिंदी साहित्य और डिजिटल प्रकाशन का वैश्विक बाजार -

हिंदी में ई-बुक्स और ऑडियोबुक्स की वैश्विक बिक्री में तेज़ी आई है। Amazon Kindle, Audible और Google Play Books जैसे प्लेटफॉर्म्स हिंदी लेखकों को अंतरराष्ट्रीय मंच दे रहे हैं।

भारतीय और विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा के कोर्स और डिप्लोमा प्रोग्राम संचालित हो रहे हैं, जिससे विदेशी छात्रों में हिंदी की माँग बढ़ी है।

पर्यटन और सांस्कृतिक आर्थिक योगदान -

भारत में आने वाले विदेशी पर्यटक जो हिंदी सीखते हैं या समझते हैं, उन्हें स्थानीय संस्कृति से बेहतर जुड़ाव मिलता है, जिससे पर्यटन उद्योग को आर्थिक लाभ होता है।

सांस्कृतिक उत्सव (जैसे "प्रवासी भारतीय दिवस", "विश्व हिंदी सम्मेलन", "हिंदी दिवस") वैश्विक स्तर पर हिंदी के प्रचार और आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देते हैं। भारतीय संस्कृति विदेशी लोगों को बहुत लुभाती

है जैसे वृंदावन की भूमि में श्रीकृष्ण के प्रति उपजे प्रेम से बहुत से विदेशी लीग अछूते नहीं रह पाये है और इनकी इस श्रद्धा को शरण 'इस्कॉन' ने भलीभांती देने का प्रयास किया है।

7 अंतरराष्ट्रीय संगठनों में हिंदी की उपस्थिति -

संयुक्त राष्ट्र और अन्य अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हिंदी को स्थान दिलाने के प्रयास चल रहे हैं।

हिंदी में अनुवाद सेवाओं, दस्तावेज़ों और भाषणों की माँग अब अंतरराष्ट्रीय संस्थानों में भी बढ़ रही है, जिससे अनुवादकों, तकनीकी विशेषज्ञों और भाषा कर्मियों को रोजगार के अवसर मिलते हैं।

इन सबके बावजूद भी हिंदी भाषा के समक्ष चुनौतियों ने अपने जड़े बनाये रखने का प्रयास किया है जो इस प्रकार है -

- अंग्रेजी का प्रभुत्व -कॉर्पोरेट जगत, शिक्षा, और तकनीकी क्षेत्रों में अंग्रेज़ी अब भी प्राथमिक भाषा है।
- यह हिंदीभाषी युवाओं के लिए असमान अवसरों का कारण बनता है।
- तकनीकी शब्दावली की कमी -विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा और व्यवसाय जैसे क्षेत्रों में हिंदी की शब्दावली या तो अनुपलब्ध है या जटिल।
- हिंदी में नवाचार और R&D पर कार्य अपेक्षाकृत कम हुआ है।
- मानसिकता और सामाजिक दृष्टिकोण ने भी इसमें योगदान दिया है - जैसे आज भी हिंदी को "गाँवों की भाषा" या "अशिक्षित वर्ग की भाषा" समझा जाता है।
- अंग्रेज़ी को "सफलता की भाषा" माना जाना एक सामाजिक समस्या है ।

इसके सुधार के उपाय और संभावनाएँ भी हमारे सामने है बस प्रयास करने की जरूरत है जैसे तकनीकी संसाधनों का विकास कर हिंदी भाषा के लिए अधिक उन्नत वॉयस असिस्टेंट, NLP मॉडल, अनुवाद टूल्स विकसित किए जाएँ ।

टेक कंपनियाँ हिंदी पर विशेष फोकस करवाने की कोशिश करें तो वहीं शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में सुधार किया जाना चाहियें।

हिंदी में बिज़नेस, मार्केटिंग, मैनेजमेंट, कानून और तकनीकी विषयों के लिए गुणवत्ता वाली पुस्तकें और कोर्स उपलब्ध कराए जाएँ।हिंदी माध्यम के छात्रों को प्रतियोगी परीक्षाओं और पेशेवर शिक्षा में बराबरी का अवसर मिले इसके साथ ही उद्यमिता और स्टार्टअप्स में प्रोत्साहन दिया जाये।हिंदी भाषा आधारित स्टार्टअप्स के लिए वित्तीय सहायता, प्रशिक्षण और मेंटरशिप दी जाए।डिजिटल इंडिया में हिंदी को केंद्र में रखा जाए।

सामाजिक जागरूकता और मानसिकता में परिवर्तन कर हिंदी भाषी जनसमुदाय के लिये हिंदी को गर्व की भाषा बनाना होगा।

सरकार और समाज को मिलकर इस मानसिकता को बदलना होगा कि सफलता केवल अंग्रेजी जानने से मिलती है।

8. निष्कर्ष (Conclusion)

हिंदी भाषा भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक ताने-बाने की आत्मा है, लेकिन अब वह आर्थिक विकास की भी एक प्रभावी शक्ति बन रही है। डिजिटल युग, उदारीकरण और लोकलाइजेशन की आवश्यकता ने हिंदी को फिर से केंद्रीय मंच पर ला दिया है। हिंदी न केवल एक संपर्क भाषा है, बल्कि वह व्यापार, शिक्षा, तकनीक और रोजगार का सशक्त माध्यम बन सकती है। आर्थिक परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह भाषा न केवल भारत के भीतर बल्कि दुनिया भर में भी महत्वपूर्ण व्यावसायिक और आर्थिक उपकरण के रूप में कार्य करती है। व्यवसाय और व्यापार के तौर पर देखें तो विज्ञापन और मार्केटिंग ,हिंदी विज्ञापनों और मार्केटिंग अभियानों के माध्यम से व्यवसायों को व्यापक दर्शक वर्ग तक पहुंचने में मदद करती है।

स्थानीयकरण (व्यवसायों का) ,डिजिटल और प्रिंट मीडिया में हिंदी का प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, मनोरंजन, लेखन और अनुवाद तथा पत्रकारिता आदि में हिंदी भाषा का प्रयोग सूचना और सूचना प्रौद्योगिकी में हिंदी का प्रयोग रोजगार को बढ़ा रहा है जिससे अर्थव्यवस्था को नये मुकाम हासिल हुए है।

वैश्विकरण के अन्तर्गत वैश्विक बाजारों प्रवासी भारतीय द्वारा हिंदी भाषा का प्रयोग आदि भारत के आर्थिक विकास में सहायक है। यदि हिंदी को केवल साहित्य तक सीमित न रखकर, उसे तकनीकी, आर्थिक और प्रशासनिक स्तर पर उन्नत किया जाए, तो यह भाषा भारत को आत्मनिर्भर और समावेशी अर्थव्यवस्था की दिशा में अग्रसर करने में निर्णायक भूमिका निभा सकती है।

अंततः हिंदी भाषा आर्थिक तौर पर किस तरह से महत्वपूर्ण और सहायक सिद्ध होती है इस शोध पत्र में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। भाषा व्यवसाय , रोजगार, व्यापार, मनोरंजन , शिक्षा - संस्कृति आदि में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

संदर्भ (Bibliography/References):

"Digital in India" Report - Internet & Mobile Association of India (IAMAI), 2023
राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार
गूगल इंडिया - "The Indian Language Internet User Report", 2021
Economic Times, “Hindi Content Consumption in Rural Markets”, 2022
यूजीसी और एनसीईआरटी की भाषा नीति रिपोर्ट
विविध ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स जैसे Medium, Quora, YouTube Analytics आदि से प्राप्त आँकड़े और अध्ययन

आधुनिक हिंदी कविता की प्रगति में वैचारिक दृष्टिकोण

अंकिता पटेल*

बीसवीं शती के तीसरे दशक में हिन्दी कविता एक नयी करवट लेती है। यह नयी कविता विद्रोह की कविता है, जिसे इतिहास में छायावादी कविता कहा गया है। विद्वानों के अनुसार यह पूर्वोक्त श्रीधर पाठक प्रवर्तित स्वच्छन्दतावादी कविता का ही विकास है। ज्ञातव्य यह है कि आचार्य शुक्ल इसे स्वच्छन्दतावादी कविता के मार्ग की बाधा मानते हैं। उनका कहना है कि स्वच्छन्दतावाद हिन्दी कविता में स्वाभाविक रूप से विकसित हो ही रहा था कि रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से 'छायावाद' के नाम से एक नया वाद उठ खड़ा हुआ, जिसमें पश्चिमी किस्म के रहस्यवाद की प्रधानता थी और जिसकी शैली अबूझ होने की हद तक लाक्षणिक थी।

तात्पर्य यह कि स्वच्छन्दतावाद जहाँ देशी था, वहाँ छायावाद एक विदेश से आयातित वस्तु, भले बँगला के माध्यम से। वस्तुस्थिति यह है कि न तो छायावाद स्वच्छन्दतावाद का बढ़ाव है, न पूर्णतः विदेशी वस्तु। स्वच्छन्दतावाद और छायावाद दोनों एक ही व्यापक स्वच्छन्दतावाद के अंग हैं। दिलचस्प है कि दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हुए भी हिन्दी कविता में एक-दूसरे के समानान्तर चलते रहते हैं। एक तरफ यदि प्रसाद, निराला और पन्त हैं, तो दूसरी तरफ माखनलाल, सियारामशरण और नवीन। जहाँ तक विदेशीपन की बात है, तो स्वच्छन्दतावाद भी नितान्त देशी न था, क्योंकि उसके पीछे भी पाठकजी द्वारा अनूदित गोल्डस्मिथ की रोमाण्टिक कृतियों की प्रेरणा थी। छायावाद के सम्बन्ध में यह सच है कि वह रवीन्द्रनाथ से प्रभावित हुआ था, लेकिन बहुत जल्दी वह हिन्दी की अपनी परम्परा का अंग भी बन गया।

छायावाद के बाद हिन्दी कविता एक नये युग में प्रवेश करती है। वह युग यथार्थवाद का है। ऐसी बात नहीं है कि द्विवेदीयुगीन और छायावादी कविता में यथार्थ के तत्त्व नहीं थे। द्विवेदीयुगीन कविता में सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन का यथार्थ बहुत अच्छी तरह प्रकट हुआ है, लेकिन प्रायः वह गद्यात्मक है, जिससे उसमें पाठकों को प्रभावित करने का गुण तो है, लेकिन उन्हें अनुभूति-चालित करने का गुण नहीं।

छायावाद में यथार्थ एक दूसरे धुवान्त पर जाकर प्रकट हुआ। उसमें उसका स्वरूप इतना काल्पनिक हो गया कि उसे पहचानने में बहुत कठिनाई पेश आयी। स्वभावतः छायावाद के बाद हिन्दी कविता में चारों ओर से यथार्थ की माँग उठने लगी। तब तक परिस्थिति भी काफी कुछ बदल चुकी थी। देश में किसान-मजदूर आन्दोलन शुरू हो गये थे, स्वाधीनता आन्दोलन में कांग्रेस के नेतृत्व से मोहभंग होने लगा था, गाँधीवाद प्रश्नों के घेरे में आ गया था, बुद्धिजीवियों की अगली कतारों में समाजवाद की विचारधारा प्रसार पा रही थी और योरोप में फासिज्म का उदय हो चुका था। इसी सबका परिणाम था कि इंग्लैण्ड की भूमि पर अँग्रेजी शिक्षाप्राप्त चन्द भारतीय युवकों के भीतर मार्क्सवादप्रेरित प्रगतिशीलता की जिस चेतना ने जन्म लिया था, उसने भारत पहुँचकर एक संगठन की गतिविधियों के माध्यम से यहाँ की मिट्टी में जड़ जमा ली और हिन्दी ही नहीं, सम्पूर्ण भारतीय साहित्य पर एक निर्णायक प्रभाव डाला। लेकिन उसकी तफसील में जाने के पहले मैं संक्षेप में हिन्दी कविता के स्वाभाविक रूप से बदलते हुए परिदृश्य की ओर संकेत करना चाहता हूँ।)

1936 में लखनऊ में प्रेमचन्द की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ का स्थापना-सम्मेलन सम्पन्न हुआ। उसके बाद सचेत रूप में प्रगतिशील आन्दोलन का प्रसार किया जाने लगा। इस आन्दोलन ने अपने कवियों की जो पहली पीढ़ी पैदा की, उसमें आनेवाले कवि हैं शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन और मुक्तिबोध। इनमें यदि और कोई नाम जोड़ना हो, तो वह रामविलास शर्मा का होगा, जिन्होंने आगे चलकर

* शोधार्थी हिंदी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय
6387481770, ankitasingh6619@gmail.com

गम्भीरतापूर्वक कविकर्म करना त्याग दिया। ये सारे कवि न केवल प्रगतिशील लेखक संघ से सक्रिय रूप से जुड़े हुए थे, बल्कि प्रायः ये सब के सब भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के भी सदस्य थे। शुक्र है कि इनमें से आधे कवियों ने कविता में संघ या पार्टी के निर्देशों का अन्धानुसरण नहीं किया और जिन्होंने किया, उन्होंने भी भिन्न प्रकार की कविताएँ लिखने के लिए अपने रचनात्मक व्यक्तित्व को खुला रखा।

बीसवीं शती की हिन्दी कविता के इतिहास में 'तार सप्तक' का प्रकाशन एक घटना है। यह काव्य-संकलन 1943 में प्रकाशित हुआ। इसकी योजना को लेकर पिछले वर्षों में इसमें संकलित कवियों के द्वारा काफी बातें कही गयी हैं।

उससे जो तथ्य सामने आया है, वह यह कि 'तार सप्तक' वस्तुतः हिन्दी के प्रगतिशील कवियों का आयोजन था। चूंकि उन दिनों अज्ञेय भी उनके साथ थे, इसलिए वे उसके सम्पादक बनाये गये। लेकिन उन्होंने अपनी भूमिका और वक्तव्य में कुछ इस तरह की बातें कहीं कि उसे उसके मुख्य लक्ष्य से हटकर एक प्रगति-विरोधी प्रकाशन मान लिया गया। उदाहरण के लिए उनकी एक-दो बातें देखी जा सकती हैं, जैसे यह कि उसमें संकलित कवि 'राहों के अन्वेषी' हैं और फिर यह कि 'आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है।' 'तार सप्तक' में संकलित सात कवियों में से चार-नेमिचन्द्र जैन, मुक्तिबोध भारतभूषण अग्रवाल और रामविलास शर्मा घोषित रूप से मार्क्सवादी थे और दो- प्रभाकर माचवे और गिरिजाकुमार-घनिष्ठ रूप से प्रगतिशील आन्दोलन से सम्बद्ध, फिर भी सम्पादक के द्वारा गलत जगह जोर डालने के कारण वह प्रगतिशीलता से भिन्न दिशा की खोज करनेवाला संकलन माना गया।

1960 के बाद हिन्दी कविता का परिदृश्य एक बार फिर बदलता है। नयी कविता अन्ततः मूल्यवादी कविता थी। उसमें आधुनिककालीन मूल्यगत संकट का बोध तो था, लेकिन साथ-साथ मूल्यों की स्थापना का प्रयास भी था।

'तीसरा सप्तक' के प्रकाशन के साथ नयी कविता जैसे अपने उत्कर्ष पर पहुँचकर अपना तेज खो देती है। उसकी भाषा, बिम्ब, छन्द-लय और संवेदना पुरानी पड़ने लगती है।) उस समय तक भारतीय समाज और राजनीति में भी परिवर्तन के चिह्न प्रकट होने लगे थे। 1962 में चीनी आक्रमण के बाद नेहरू-युग से मोहभंग की प्रक्रिया शुरू हुई, जिसकी परिणति 1967 के आमचुनाव में हुई, जबकि उत्तर भारत के आठ-नौ राज्यों से कांग्रेस का शासन समाप्त हो गया और मिली-जुली सरकारों का एक नया दौर वजूद में आया। इन सरकारों से भी मोहभंग होते देर न लगी। इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी भयानक तनाव का वातावरण था।

राजकमल चौधरी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। धूमिल ने नयी कविता की भाषा और मूल्य-चेतना को तहस-नहस करके बदले हुए लहजे में आक्रोश से भरी एक ऐसी कविता लिखी, जो युवा कवि की मनोदशा के सर्वथा अनुरूप थी। उस लहजे में एक तरफ भदेसपन था और दूसरी तरफ बहुत ही कलात्मक मुहावरे रचने की क्षमता। आश्चर्य नहीं कि धूमिल की उक्तियाँ हिन्दी क्षेत्र में कविता के नये पाठकों के बीच सुभाषितों के रूप में प्रचलित हो गयीं।

इसी समय उनकी अन्य कविताओं के साथ उनकी 'पटकथा' शीर्षक लम्बी कविता निकली, तो अतिशय लोकप्रिय हुई। लेकिन यह सब होते हुए भी धूमिल दृढ़ सामाजिक चेतना के कवि थे, जो बाद के दिनों में उग्र वामपन्थ की तरफ तो गये, लेकिन निषेध और सिनिसिज्म की ओर नहीं। वे मूलतः प्रगतिशील कवि थे, जिसने प्रगतिशील कविता की सभी रूढियों का ध्वंस किया और एक भिन्न प्रकार की क्रान्तिकारी कविता का निर्माण। उनके विपरीत राजकमल अमरीकी बीट कविता और बँगला की भूखी पीढ़ी की कविता से प्रभावित थे, जिनकी स्वतन्त्रता की धारणा बहुत कुछ अराजकतावादी थी। स्वभावतः वे हिन्दी में 'अकविता' का जो आन्दोलन चला था, उसके समगोत्री कवि थे।

आठवें-नौवें दशकों में पुनः एक पूरी नयी कवि-पीढ़ी उभरकर सामने आ जाती है, जिसमें विजेन्द्र, ऋतुराज, कुमार विकल, वेणुगोपाल और आलोकधन्वा से लेकर राजेश जोशी, अरुण कमल और उदय प्रकाश तक जैसे कवि शामिल हैं। इन कवियों की विशेषता यह है कि ये सारे के सारे वामपंथी हैं।

इस पीढ़ी के उदय के पीछे भी कुछ परिस्थितियाँ थीं, जिनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ आवश्यक है। वे हैं स्वतन्त्रता-संघर्ष में वियतनाम की निर्णायक विजय, माओवाद का व्यापक प्रचार, भारतीय राजनीति में कम्युनिस्टों की बढ़ती हुई भूमिका, प्रगतिशील लेखक संघ का पुनर्गठन, मुक्तिबोध रचनावली का प्रकाशन तथा प्रेमचन्द जन्मशताब्दी वर्ष का आन्दोलन के रूप में मनाया जाना। उक्त कवियों में से पहले कुमार विकल, वेणुगोपाल और आलोकधन्वा नयी ऊर्जा लेकर आये थे, उनमें एक स्पृहणीय कोटि की वक्तृत्व कला और नाटकीयता थी, जिससे उन्हें अच्छी लोकप्रियता प्राप्त हुई। लेकिन उनमें से सिर्फ आलोकधन्वा ने सही ढंग से अपना विकास किया, बावजूद इसके कि अब तक उनका एकमात्र कविता-संग्रह प्रकाशित है- 'दुनिया रोज बनती है'। इस कवि ने धीरे-धीरे अपनी कविता को अतिरिक्त क्रान्तिकारिता और नाटकीयता से मुक्त किया और उसे एक गहन और नाजुक मानवीय स्वर प्रदान किया। थोड़ा बाद में राजेश, अरुण कमल और उदय प्रकाश कविता में एक बहुत ही सरल और घरेलू स्वर लेकर आये, जो धूमिल के पेचदार मुहावरे के बाद बहुत आत्मीय प्रतीत हुआ था।

बीसवीं शती की हिन्दी कविता के सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि एक युग अथवा दौर की समाप्ति के साथ उस युग अथवा उस दौर की कविता समाप्त नहीं हो गयी है। पूर्ववर्ती युग के कवि परवर्ती युगों में भी सक्रिय रहे हैं और अनेक बार ऐसा हुआ है कि उनकी सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि उनका युग गुजर जाने के बाद सामने आयी है। उदाहरण के लिए द्विवेदी-युग की सर्वश्रेष्ठ कृति 'साकेत' का प्रकाशन-काल है 1931, जो कि छायावाद का उत्कर्ष-काल है और 'कामायनी' का प्रकाशन-काल है 1936, जो कि प्रगतिवाद का उदय-काल है।

इसी तरह मुक्तिबोध का युगान्तरकारी कविता-संग्रह 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' प्रगतिवाद का दौर समाप्त हो जाने के बाद 1964 में सामने आया। पन्त, दिनकर, नागार्जुन, अज्ञेय, रघुवीर सहाय और केदारनाथ सिंह भी लगातार सक्रिय रहे हैं, जिससे उन्होंने विपुल काव्य की सृष्टि की है और उससे हिन्दी कविता को समृद्ध किया है। इनमे से कई कवि पूरे परिदृश्य पर भी छाये रहे हैं, जैसे नागार्जुन, अज्ञेय और रघुवीर सहाय। दूसरी बात यह कि कभी-कभी यह भी देखने में आया है कि एक युग के कवि ने दूसरे युग की कविता की नियति के निर्माण में निर्णायक भूमिका अदा की है। निराला और पन्त मूलतः छायावादी थे, लेकिन प्रगतिवाद के विकास में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसी तरह अज्ञेय मूलतः उत्तर-छायावादी थे, लेकिन उन्होंने नयी कविता का नेतृत्व किया।

मुक्तिबोध के बारे में भी यही सही है। वे मूलतः प्रगतिवादी थे, लेकिन युवा कविता ने उनमें अपना नायक पाया। तीसरी बात यह कि बीसवीं शती की हिन्दी कविता यथार्थ की दिशा में बहुत पेचीदे ढंग से विकास करती रही है। इस पेचीदगी को हम तब समझेंगे, जबकि इस विकास-यात्रा को हम द्विवेदीयुगीन गद्यात्मकता से परवर्ती कवित्व की ओर यात्रा के रूप में ही नहीं, बल्कि छायावादी कल्पनाशीलता से परवर्ती वास्तविकता की ओर यात्रा के रूप में भी देखेंगे।

निष्कर्ष

आधुनिक हिंदी कविता के वैचारिक प्रसार व प्रगति में नए काव्य आंदोलनों का स्वर व प्रकृति निरूपण को नयी दृष्टि देता है जो आलोचना का मानक तय करता है । इस प्रसार में अपना एक अलग वैचारिक दर्शन लेकर चलने वाले काव्य आंदोलन अपने कवियों की प्रमाणिकता भी उसी विचार से सिद्ध करते रहे हैं जो उन्हें युग विशेष बनाती है 1960 के काव्य उत्कर्ष में यौन मुक्तता, नवीन उपमान, प्रतीक योजना, छंद मुक्त कविता आदि विशेष पहचान रही है। भारतेंदु युग व द्विवेदी युग में रचना करने वाले कवियों की

तुलना में इस युग के कवियों की कविताओं को पहचान व संभावना के संकट में रखने का भाव था जो नवीन व यथार्थ स्वाभाव की प्रासंगिकता के कारणवश धूमिल हो गया।

संदर्भ ग्रंथ

छायावाद - डॉ नामवर सिंह
कविता के नए प्रतिमान'- डॉ. नामवर सिंह
आधुनिक हिन्दी कविता' -डॉ. नन्दकिशोर नवल
आधुनिक हिंदी कविता - डॉ हरदयाल
कविता पहचान का संकट - डॉ नंदकिशोर नवल

सूचना–प्रौद्योगिकी और नव मीडिया के दौर में हिंदी भाषा का समकालीन परिदृश्य

उत्कर्ष त्रिपाठी*

1. अमूर्त (Abstract) :-

21वीं सदी के उत्तरार्ध में सूचना-प्रौद्योगिकी (Information Technology) और नव मीडिया (New Media) के अभूतपूर्व विकास ने वैश्विक परिदृश्य पर मानवीय संवाद, संस्कृति और भाषायी विनिमय के पारंपरिक प्रतिमानों को पूरी तरह बदल दिया है। प्रस्तुत शोध-आलेख डिजिटल क्रांति के इस युग में हिंदी भाषा और साहित्य पर पड़ने वाले बहुआयामी प्रभावों का सम्यक भाषावैज्ञानिक विश्लेषण करता है। शोध का मुख्य उद्देश्य यह पड़ताल करना है कि सोशल मीडिया और डिजिटल संचार माध्यमों के आगमन के पश्चात हिंदी भाषा की गतिशीलता, उसके व्याकरणिक स्वरूप, शब्द-संरचना तथा साहित्यिक विधाओं में किस प्रकार के आमूल-चूल परिवर्तन आए हैं।

विशिष्ट रूप से, यह शोध फेसबुक (Facebook) और ट्विटर (Twitter/X) जैसे अनौपचारिक मंचों पर प्रयुक्त होने वाली 'रोमन-हिंदी' (हिंग्लिश) में हो रहे भाषायी संक्षेपण (Language Abbreviation), स्वनिमिक लोप (Phonemic Deletion), ध्वनि विकल्पन (Sound Alternation) और भावचिह्नों (Emojis) के बढ़ते प्रयोग का संरचनात्मक मूल्यांकन करता है। इसके अतिरिक्त, शोध-आलेख मानक हिंदी भाषा की संरचना पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों जैसे–वर्तनीगत त्रुटियां, संयुक्ताक्षरों का गलत प्रयोग, परसर्गों का विचलन और व्याकरणिक कोटियों के शिथिलिकरण को भी रेखांकित करता है। अंततः, यह शोध डिजिटल कॉर्पस (Corpus) के निर्माण की आवश्यकता पर बल देता है ताकि नव मीडिया पर प्रयुक्त हिंदी के भाषायी व्यवहारशास्त्र (Net-Speak) को समझा जा सके।

मुख्य शब्द (Keywords): सूचना-प्रौद्योगिकी, नव मीडिया, भाषायी संक्षेपण, रोमन-हिंदी, कोड-मिश्रण, मानक हिंदी, भावचिह्न (इमोजी), डिजिटल कॉर्पस।

2. प्रस्तावना (Introduction)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जिसका संपूर्ण जीवन सामाजिक अभिवृत्तियों, सामाजिक क्रियाओं और पारस्परिक विनिमयों के सहारे गतिमान रहता है। इन सभी विनिमयों का मुख्य आधार संवाद या संप्रेषण है। सुप्रसिद्ध साहित्यकार प्रेमचंद ने इस संदर्भ में अत्यंत सटीक रूप से प्रमाणित किया था कि *"मनुष्य के मेल-मिलाप के जितने साधन हैं, उसमें सबसे मजबूत असर डालने वाला रिश्ता भाषा का है"*। इसी प्रकार, वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने सुप्रसिद्ध निबंध 'शब्दों का देश' में लिखा है कि "अर्थ की महिमा से शब्द को प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और शब्द अपने युग के प्रतिनिधि बनकर उस काल की गाथा हमें सुनाते हैं"। वर्तमान युग में सूचना-प्रौद्योगिकी और इंटरनेट के वैश्विक जाल ने शब्दों के इस संसार को डिजिटल आयाम प्रदान कर दिया है, जहाँ न्यू मीडिया पर सर्जित शब्दों का संसार अपने अद्वितीय तरीके से इस संक्रमणकालीन युग की गाथा सुना रहा है।

सूचना-प्रौद्योगिकी के आगमन ने न केवल मानव जीवन को सुगम बनाया है, बल्कि भाषाओं के पारंपरिक स्वरूप को भी चुनौती दी है। जनसंचार विशेषज्ञ विल्बर श्रेम ने अपनी युगांतकारी पुस्तक 'मास मीडिया एंड नेशनल Development' में स्पष्ट किया था कि जनसंचार के साधन दुनिया का नक्शा बदलने की क्षमता रखते हैं। साठ के दशक में ही प्रख्यात विशेषज्ञ डॉ. वाई.वी. लक्ष्मण ने भी यह सिद्ध कर दिया था कि

* शोधार्थी, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

किसी भी देश के सामाजिक-आर्थिक विकास में जनसंचार माध्यमों की प्रत्यक्ष और अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

आज वह जनसंचार माध्यम अपने सुधरे हुए और सर्वाधिक लोकतांत्रिक रूप यानी 'नव मीडिया' (New Media) के रूप में हमारे सामने उपस्थित है। नव मीडिया एक ऐसा अनूठा माध्यम है जो भौगोलिक सीमाओं के बंधनों से पूरी तरह मुक्त है तथा पारंपरिक राजनीतिक या सामाजिक नियंत्रण से लगभग स्वतंत्र है। इस माध्यम की अद्‌वितीय लोकप्रियता के मूल में इसकी त्वरित अभिव्यक्ति, त्वरित प्रसारण, त्वरित प्रतिक्रिया (Immediate Feedback) और विश्वव्यापी प्रसार निहित है। यहाँ प्रयोक्ता को न तो समय की किसी सीमा से जूझना पड़ता है, न ही सर्कुलेशन (वितरण) की कमी का सामना करना पड़ता है, और न ही महीनों तक पाठकीय प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। प्रस्तुत शोध इसी पृष्ठभूमि में नव मीडिया के द्‌वारा प्रचारित-प्रसारित हो रहे हिंदी भाषा व साहित्य के वर्तमान स्वरूप और उसके भविष्य के संभावित निहितार्थों पर प्रकाश डालने का एक गंभीर अकादमिक प्रयास है।

3. नव मीडिया (न्यू मीडिया) की अवधारणा और बहुआयामी स्वरूप

नव मीडिया के चरित्र और उसकी अंतर्निहित विशेषताओं को समझने के लिए अकादमिक जगत में कई सैद्‌धांतिक परिभाषाएं दी गई हैं। समाजशास्त्री लिस्टर (2003) के अनुसार, न्यू मीडिया की मुख्य रूप से पांच बुनियादी विशेषताएं होती हैं:

डिजिटैलिटी (Digitality): इसके अंतर्गत समस्त प्रकार के डेटा और सूचनाओं का बाइनरी कोड (0 और 1) में रूपांतरण शामिल है, जिससे संचय और त्वरित संचरण संभव होता है।

इंटरएक्टिविटी (Interactivity): यह प्रयोक्ता और माध्यम के बीच दोतरफा संवाद की अद्‌वितीय सुविधा है, जो पारंपरिक मीडिया (जैसे दूरदर्शन या रेडियो) की एकतरफा प्रकृति को ध्वस्त करती है।

हाइपरटेक्चुएलिटी (Hypertextuality): इसके द्‌वारा विभिन्न सूचनाओं, आलेखों और डिजिटल कड़ियों (Links) का आपस में ऐसा जुड़ाव होता है कि प्रयोक्ता अपनी इच्छानुसार ज्ञान के मार्ग का चयन कर सकता है।

डिसपर्शियल (Dispersal/Dispersion): यह सूचनाओं का विकेंद्रीकृत रूप है, जिसके तहत सूचना का प्रसार किसी एक केंद्र से न होकर व्यापक जनसमूह के समानांतर नेटवर्क द्‌वारा होता है।

वर्चुएलिटी (Virtuality): इसके माध्यम से एक डिजिटल या आभासी संसार का निर्माण होता है, जो भौतिक रूप से उपस्थित न होते हुए भी वास्तविक होने का तीव्र अहसास कराता है।

नव मीडिया हर दिन के वास्तविक और जीवंत मानवीय अनुभवों को आधुनिक तकनीक की सहायता से एक कृत्रिम या आभासी स्वरूप में तैयार करता है। इसी कारण इस पर लिखी जाने वाली भाषा, गद्‌य और साहित्य पर इन पांचों विशेषताओं का समेकित व गहरा प्रभाव पड़ता है।

आमतौर पर सामान्य जनमानस में नव मीडिया का अर्थ केवल इंटरनेट पर होने वाली पत्रकारिता या ऑनलाइन समाचार पोर्टलों से लिया जाता है। परंतु, प्रसिद्‌ध संचार विशेषज्ञ बालेन्दु शर्मा दाधीच के अनुसार, न्यू मीडिया केवल समाचारों, लेखों, सृजनात्मक लेखन या पत्रकारिता तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसके अनगिनत रूप हो सकते हैं। इसके अंतर्गत निम्नलिखित तकनीकी अवयवों को सम्मिलित किया जाता है:

- समस्त प्रकार की व्यावसायिक व व्यक्तिगत वेबसाइट्स, ब्लॉग्स और वेब-पोर्टल।
- ई-समाचार पत्र (E-Papers) और ई-पत्रिकाएं (E-Magazines)।
- फेसबुक, ट्‌विटर (X), इंस्टाग्राम जैसी सोशल नेटवर्किंग साइट्स।
- ई-मेल, live चैट, इंस्टेंट मैसेजिंग सेवाएं (व्हाट्सएप, टेलीग्राम आदि)।
- एसएमएस (SMS) और एमएमएस (MMS)।
- ऑडियो, वीडियो और वेब-आधारित विज्ञापन।

- यूजर जनरेटेड कंटेंट (User Generated Content) जैसे यूट्यूब, विकिपीडिया और सिटीजन जर्नलिज्म।
- ई-बैंकिंग, ई-कॉमर्स, कंप्यूटर सॉफ्टवेयर और इंटरएक्टिव टेलीविजन।
- ऑनलाइन शिक्षा (E-Learning) और डिजिटल मार्केटिंग।

इस प्रकार, नव मीडिया आधुनिक समाज के प्रत्येक अंग को प्रभावित कर रहा है। इसी को प्रचलित जन-शब्दावली में 'सोशल मीडिया' के नाम से एक विशेष पहचान मिली है। शोधकर्ता अर्चना मित्रा (2011) ने अपने शोध-पत्र 'न्यू मीडिया एंड कन्वर्जेंस: ए डेवलपमेंट कम्युनिकेशन पर्सपेक्टिव' में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि न्यू मीडिया वास्तव में कुछ भी नया नहीं है, बल्कि यह सभी पारंपरिक और पूर्ववर्ती मीडिया रूपों का एक आधुनिक सम्मिश्रण (Convergence) है, जिसमें मूल मीडिया की सभी अवधारणाओं, विचारों और सिद्धांतों को एक सर्वथा नए रूप में लागू किया जाता है। इसने प्रत्येक आम नागरिक को इस कदर समर्थ बनाया है कि वह अपने हाथ में मौजूद एक छोटे से मोबाइल फोन से भी खुद को सशक्त वाणी दे सकता है।

4. नव मीडिया के समाज-भाषायी और सांस्कृतिक संकट

जहाँ एक ओर नव मीडिया ने अभिव्यक्ति का लोकतांत्रीकरण किया है, वहीं इसके कुछ गंभीर सांस्कृतिक और सामाजिक संकट भी उभरकर सामने आए हैं। हालिया प्रकाशित विद्वान दिलीप मंडल और गीता यादव की पुस्तक 'अन-सोशल नेटवर्क' तथा बेकरमैन की प्रसिद्ध कृति 'द क्वाइट बिफोर: ऑन द अनएक्सपेक्टेड ऑफ रेडिकल आइडियाज' के निष्कर्षों के आधार पर यह चिंताजनक तथ्य सामने आया है कि जिस न्यू मीडिया से शुरुआती दौर में लोकतांत्रिक क्रांति की बहुत बड़ी उम्मीदें थीं, अब व्यावहारिक अनुभवों से यह सिद्ध हो रहा है कि यह समाज, संस्कृति और भाषा के लिए अत्यंत खतरनाक भी साबित हो सकता है।

इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि न्यू मीडिया पर किसी भी प्रकार का 'आत्मनियमन' (Self-Regulation) या संस्थागत सेंसरशिप का सिद्धांत प्रभावी रूप से लागू नहीं होता। प्रख्यात ललित निबंधकार डॉ. नर्मदाप्रसाद उपाध्याय इस तकनीकी हस्तक्षेप पर गहरी चिंता व्यक्त करते हुए लिखते हैं:

- "मनुष्य की अस्मिता की यात्रा मशीन छीन रही है। मनुष्य मूक हो रहा है और मशीन वाचाल। मशीन की भाषा शोर है, जिसमें कोई स्वर नहीं है, संगीत नहीं है। जिसका कोई अर्थ भी नहीं है। उसकी अभिव्यक्ति केवल उत्पादन है। आज सोशल मीडिया अनियंत्रित और अमर्यादित होकर इसको बढ़ावा दे रही है। वह उत्पादन जिसके सहारे कुछ खास लोग लाभान्वित होते है, शक्तिशाली बन जाते है।"
- मशीनीकरण और इस अनियंत्रित डिजिटल होड़ ने भाषा के भीतर से उसके सबसे सुंदर तत्व–यानी उसकी संवेदनशीलता, रस और आत्मीयता को सोखना शुरू कर दिया है, जिसका सीधा प्रभाव हिंदी भाषा के समकालीन स्वरूप पर देखा जा सकता है।

5. नव मीडिया की भाषा का स्वरूप और भाषायी संक्षेपण (Language Abbreviation)

नव मीडिया की भाषा पर चर्चा करते ही भाषावैज्ञानिकों के सामने जो सबसे पहला और प्रत्यक्ष रूप उभरकर आता है, वह है–भाषाओं का निरंतर सिकुड़ना और उनका अत्यधिक संक्षेपित या संकेतात्मक रूप धारण करना। सिकुड़ना (Shrinking) या सांकेतिकता (Symbolism) का यह गुण नव मीडिया की भाषा की सबसे प्रधान विशेषता बन चुका है। इसके पीछे मुख्य रूप से दो कारण उत्तरदायी हैं: प्रथम, प्रयोक्ताजनित कारण (उपयोगकर्ता की जल्दबाजी या आलस्य) और द्वितीय, माध्यमजनित कारण (तकनीकी मंचों द्वारा शब्दों या अक्षरों की सीमा तय करना)।

इस तकनीकी दबाव से एक बिल्कुल नई मिश्रित भाषा उभरकर सामने आई है। सूचनापरकता और डिजिटल कंटेंट की प्रचुरता के कारण इस भाषा के मूल में अब केवल तीव्र 'संप्रेषणशीलता' (Communicability) बची है, जबकि भाषा का 'संवेदनशील' पुट पीछे छूटता जा रहा है। इसी कारण समकालीन समय में भाषा की शैली, कथन, भंगिमा, अभिव्यक्तियां, कुल शब्द-संख्या और यहाँ तक कि सामाजिक सरोकार भी पूरी तरह बदल

गए हैं। जैसे-जैसे कोई भाषा आधुनिक तकनीक से जुड़ती है, उसे तकनीकी संरचना के कठोर ढांचे और की-बोर्ड (Key-board) के अनुरूप ढलना पड़ता है।

हिंदी भाषा जब कंप्यूटर और इंटरनेट पर एक तकनीकी भाषा के रूप में स्थापित हुई, तब उसमें भी ये अपरिहार्य परिवर्तन परिलक्षित हुए। हालांकि, भाषावैज्ञानिक दृष्टि से अपनी विशिष्ट अक्षरात्मक ध्वनि (Syllabic Phonetics) की वजह से हिंदी भाषा के मूल रूप में कृत्रिम परिवर्तन की संभावना अन्य भाषाओं (जैसे अंग्रेजी) की तुलना में बहुत कम बनती है। यही कारण है कि देवनागरी लिपि में लिखे जाने पर हिंदी के मूल रूप के साथ संक्षेपण संबंधी विकृतियां कम दिखाई देती हैं।

फेसबुक या ट्विटर जैसे लोकप्रिय सोशल मीडिया मंचों का मूल भाषायी कलेवर प्रारंभ में पूर्णतः अंग्रेजी का रहा था, क्योंकि इन माध्यमों का तकनीकी विकास और कोडिंग इसी भाषा में हुई थी। परंतु बाद में, जब इन मंचों का भौगोलिक विस्तार हुआ, तो व्यावसायिक और सामाजिक कारणों से इन्हें वैश्विक स्तर पर कई अन्य क्षेत्रीय भाषाओं से जोड़ना पड़ा। इसी क्रम में जैसे-जैसे करोड़ों नए प्रयोक्ता इन मंचों से जुड़े, उनकी भाषा भी उनके साथ इन डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर दाखिल हुई और इसी प्रक्रिया में हिंदी भाषा का भी समावेशन हुआ। यहाँ प्रयोक्ताओं के भाषायी व्यवहार के कारण, उपयोगकर्ताओं ने हिंदी के पारंपरिक रूप को अपनी सुविधा के अनुसार बदलना शुरू कर दिया।

6. फेसबुक और ट्विटर में भाषायी संक्षेपण का भाषावैज्ञानिक विश्लेषण

भाषाविज्ञान के सिद्धांतों के अनुसार, किसी भी जीवंत भाषा में दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियां निरंतर सक्रिय रहती हैं:

1. केंद्राभिगामी प्रवृत्ति (Centripetal Tendency): यह प्रवृत्ति भाषा के मानक रूप को बचाए रखती है और उसमें होने वाले अनियंत्रित परिवर्तन की गति को रोकती है।
2. केंद्रपरामी प्रवृत्ति (Centrifugal Tendency): यह प्रवृत्ति भाषा में नए प्रयोगों को बढ़ावा देती है, उसमें परिवर्तन लाती है और एक नई गति का संचार करती है।

फेसबुक और ट्विटर जैसे मंचों की भाषा अनौपचारिक अभिव्यक्ति पर आधारित होने के कारण पूर्णतः केंद्रपरामी प्रवृत्ति पर कार्य करती है, जो प्रतिदिन भाषा के वॉल्यूम और उसकी गति को अनियंत्रित रूप से बढ़ा रही है। जब अभिव्यक्ति के माध्यम और उपकरण बदलते हैं, तो स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्ति की शैली और भाषा का स्वरूप भी बदल जाता है। सामान्यतः कोई भी भाषा मुख्यतः पांच चरणों में परिवर्तित होती है:

इन सभी पांचों स्तरों पर होने वाले परिवर्तनों के आधार पर ही भाषा में 'संक्षेपण' (Abbreviation) घटित होता है। फेसबुक के पोस्ट और ट्विटर के ट्वीट मूलतः लिखित रूप (Textual Form) में होते हैं, इसलिए यहाँ प्रत्यक्ष 'ध्वनि परिवर्तन' के आधार पर संक्षेपण का कार्य सैद्धांतिक रूप से कठिन प्रतीत होता है।

परंतु, ध्वनि विकल्पन (Phonemic Alternation) के आधार पर लिखित टेक्स्ट में भाषा कितनी संकुचित और कितनी अत्यधिक सांकेतिक हो चुकी है, इसका आकलन हम इन मंचों से प्राप्त वास्तविक डेटा और आँकड़ों के माध्यम से कर सकते हैं। प्रयोक्ताओं द्वारा शब्दों को जबरन छोटा किया जा रहा है, जो यद्यपि हिंदी भाषा की मूल प्रकृति नहीं है, फिर भी निरंतर "मिश्रण (Code-Mixing)" और "कोड-परिवर्तन (Code-Switching)" के द्वारा हिंदी के रूप बदले जा रहे हैं।

संरचनावादी भाषावैज्ञानिक फर्डिनेंड डी सस्यूर ने 'कोर्स इन जनरल लिंग्विस्टिक्स' में लिखा था कि ध्वनि परिवर्तनों की खोज करना भाषाविज्ञान की सबसे कठिन समस्या है क्योंकि इसके अंतर्गत ध्वनि का आगम, लोप और विकार जैसी जटिल प्रक्रियाएं घटित होती हैं। चूंकि सोशल मीडिया पर भाषा उच्चरित न होकर टेक्स्ट के रूप में है, इसलिए इसके विश्लेषण में पारंपरिक सुर-आधारित शास्त्रीय वर्गीकरण को लागू करना संभव

नहीं है। अतः हिंदी के स्वनिमिक अध्ययन के लिए यहाँ मुख्य रूप से ध्वनि लोप और विकार का सहारा लिया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि भाषा में संक्षिप्तता किस प्रकार आ रही है।

6.1. एसएमएस (SMS) संस्कृति से सोशल मीडिया तक की यात्रा

सोशल मीडिया में जो भाषायी संक्षेपण की तीव्र स्थिति आई है, उसमें न केवल शब्दों को छोटा किया गया है, बल्कि पूरे के पूरे शब्द संक्षेपित होकर ध्वन्यात्मक स्तर के एकल अक्षरों या संकेतों में बदल गए हैं। भाषा का यह विकृत रूप मूलतः मोबाइल मीडिया की लघु संदेश सेवा–जिसे हम SMS (Short Message Service) कहते हैं–से उपजा है। मोबाइल की सीमित स्क्रीन और प्रति संदेश अक्षरों की तय सीमा (160 कैरेक्टर) से शुरू हुई इस भाषा की संकुचित यात्रा आज इंटरनेट और सोशल मीडिया के प्रत्येक अनौपचारिक मंच पर उपस्थित है।

भाषा का संकुचन कोई नई घटना नहीं है। मानव का यह सहज स्वभाव रहा है कि वह अपने जीवन को सुगम बनाने के लिए न्यूनतम प्रयास में अधिकतम लाभ चाहता है। भाषाविज्ञान में इसे 'प्रयत्न लाघव' (Law of Least Effort) कहा जाता है। इसी प्रयत्न लाघव के कारण मनुष्य ने कंप्यूटर और इंटरनेट की भाषा में भी तीव्र संकुचन कर लिया है।

7. डेटा विश्लेषण एवं गहन वर्गीकरण (Data Analysis and Categorization)

भाषावैज्ञानिक दृष्टि से किसी भी शब्द की रचना के लिए सस्यूर के सिद्धांतों के अनुसार संकेतक (Signifier) एवं संकेतित (Signified) दोनों की अनिवार्य आवश्यकता होती है, जो स्थान और माध्यम के आधार पर भिन्न हो सकती हैं। सोशल मीडिया (फेसबुक और ट्विटर) से प्राप्त डेटा के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि शब्दों के संक्षेपण और रूपांतरण की यह प्रक्रिया निम्नलिखित वैज्ञानिक बिंदुओं के अंतर्गत घटित हो रही है:

क) लिपि का प्रभाव और स्वर-लोप (**Omission of Vowels)**

सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह सामने आया है कि जब प्रयोक्ता शुद्ध देवनागरी लिपि का प्रयोग करके हिंदी लिखता है, तब वहाँ संक्षेपण या वर्तनी विरूपण की दर नगण्य होती है। परंतु, जैसे ही हिंदी लिखने के लिए रोमन लिपि (Roman Script) यानी 'हिंग्लिश' का आश्रय लिया जाता है, वैसे ही शब्दों के विभिन्न स्तरों पर रूप बदलने लगते हैं। रोमन में हिंदी लिखते समय प्रयोक्ता शब्दों के बीच से स्वर ध्वनियों (Vowels) को पूरी तरह गायब कर देते हैं।

उदाहरण 1: 'गलत कहा बहना' को रोमन में glat kha bhna लिखा जाता है, जहाँ galat में से 'a' का लोप करके उसे glat बना दिया गया है।

उदाहरण 2: 'बनाया' (banaya) को आधा अनूठा रूप देते हुए bnaya लिखा जा रहा है।

ख) अनुनासिक ध्वनियों का लोप (Omission of Nasal Sounds)

विशेषकर शब्दों के अंत में आने वाली अनुनासिक ध्वनियों (चंद्रबिंदु या अनुस्वार) को लिखने के क्रम में पूरी तरह छोड़ दिया जाता है।

उदाहरण 1: 'माँ' (maa) को केवल ma और 'कहाँ' ('kaha') को kha लिखा जाता है।

उदाहरण 2: 'जहाँ' जैसे शब्दों को संक्षिप्त करके jaha या jha लिख दिया जाता है।

ग) ह्रस्वीकरण (Vowel Shortening)

समय और श्रम बचाने के लिए दीर्घ स्वरों (Long Vowels) को ह्रस्व स्वरों (Short Vowels) में बदल दिया जाता है।

उदाहरण 1: 'दीपक' को मानक Deepak के स्थान पर dipak लिखा जाता है।

उदाहरण 2: 'खूब' शब्द को khoob न लिखकर केवल khub दर्ज किया जाता है।

घ) एकल अक्षरों (Single Characters) का बहु-अक्षरात्मक प्रयोग

रोमन लिपि के किसी एक अक्षर को पूरे शब्द के विकल्प के रूप में प्रयोग करने की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ी है।

Q = क्यों / क्यूँ
m = मैं / में (दोनों अर्थों में व्यापक प्रयोग)
v = भी
h = है / हैं / हो / हाँ

ङ) कोड-मिश्रण (Code-Mixing) के तहत अंग्रेजी शब्दों का संक्षेपण

ध्वनि विकल्पन और 'प्रयत्न लाघव' के आधार पर सोशल मीडिया पर जिन शब्दों को छोटा किया जा रहा है, वे अक्सर मूल हिंदी के न होकर अंग्रेजी के शब्द होते हैं। प्रयोक्ता इन्हें कोड-मिश्रण (Code-Mixing) की प्रवृत्ति के तहत हिंदी वाक्यों के बीच धड़ल्ले से शामिल करते हैं। इस भाषायी विरूपण के कुछ प्रतिनिधि उदाहरण निम्नलिखित हैं:

कॉलेज (College): रोमन लिपि में त्वरित टाइपिंग के लिए इसके बीच के स्वरों को हटाकर इसे clg के रूप में संक्षेपित किया जाता है।

वाक्य में प्रयोग का स्वरूप: "जब मैं "clg" में थी..."

ऑसम (Awesome): 'शानदार' के अर्थ में प्रयुक्त इस अंग्रेजी विशेषण को इसके मूल स्वनिमिक स्वरूप से काटकर केवल "Osm" दर्ज किया जाता है।

वाक्य में प्रयोग का स्वरूप: "Osm" dikh rahe h mam"

नमस्ते (Namaste): यहाँ हिंदी के मूल शब्द को ही रोमन में लिखते समय स्वर-लोप की प्रक्रिया से गुजारकर **Nmste** बना दिया जाता है।

वाक्य में प्रयोग का स्वरूप: "Nmste Meko tym chahiye"

रिलैक्स (Relax): 'शांत रहने' या 'तनावमुक्त होने' के भाव वाले इस शब्द को सोशल मीडिया पर अत्यधिक सांकेतिक रूप देकर rlx लिखा जाता है।

वाक्य में प्रयोग का स्वरूप: "तुम rlx रहो, glt बात जी"

प्लीज (Please): 'कृपया' के अर्थ में प्रयुक्त होने वाले इस अत्यंत आम शब्द को इसके पारंपरिक स्वरूप (Please) के बजाय केवल plz के रूप में स्वीकारा जा चुका है।

वाक्य में प्रयोग का स्वरूप: "plz" तुम ऐसा मत कहो"

विश्लेषण परिणाम: आंकड़ों के विश्लेषण से यह स्पष्ट रूप से प्राप्य है कि फेसबुक और ट्विटर की भाषा में संक्षेपण की आंतरिक संरचना तो एक समान है, परंतु फेसबुक पर कोड-मिश्रण और कोड-परिवर्तन की दर सर्वाधिक है। ट्विटर पर इसकी प्रतिशतता तुलनात्मक रूप से कम है। दूसरी मुख्य बात यह है कि फेसबुक पर देवनागरी के साथ-साथ रोमन लिपि का प्रयोग प्रचुरता से होता है, जबकि ट्विटर पर या तो शुद्ध अंग्रेजी में ट्वीट किए जाते हैं या शुद्ध देवनागरी में; वहाँ 'रोमन हिंदी' लिखने का चलन सीमित है।

8. सांकेतिक प्रारूप: भावचिह्न (इमोजी) का भाषावैज्ञानिक महत्व

नव मीडिया की समकालीन भाषायी संरचना पर विचार करते समय 'इमोजी' (Emoji) के प्रभाव को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। आज फेसबुक और ट्विटर पर प्रयोक्ता पोस्ट या ट्वीट करते समय प्रचुर मात्रा में इमोजी का प्रयोग करते हैं। यद्यपि इमोजी अपने आप में कोई पूर्ण व्याकरणिक भाषा नहीं है, तथापि यह नव मीडिया की समकालीन भाषा का एक अपरिहार्य और अत्यंत महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी है। हिंदी भाषा के प्रयोक्ता इसे तकनीकी शब्दावली में 'भावचिह्न' कहते हैं।

भाषावैज्ञानिक संप्रेषण के सिद्धांतों के आधार पर इमोजी को 'पैरालांग्वेज' (Paralanguage) के समकक्ष समझा जा सकता है। पैरालांग्वेज की प्रामाणिक परिभाषा के अनुसार, यह गैर-मौखिक संचार का वह क्षेत्र है जो

विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने के साधन के रूप में शरीर की भाषा और आवाज की बारीकियों पर जोर देता है।

चूंकि लिखित भाषा में वक्ता के चेहरे के हाव-भाव, आँखों के इशारे और आवाज का उतार-चढ़ाव अनुपस्थित होता है, इसलिए लिखित भाषा के साथ जब इमोजी को जोड़ दिया जाता है, तो वह संवाद को अत्यधिक संप्रेषणीय और सजीव बना देती है।

'इमोजी' मूल रूप से एक जापानी भाषा का शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है–'चित्रात्मक चरित्र' या 'चित्र-अक्षर'। जापानी में 'इ' (E) का अर्थ 'चित्र' (Picture) होता है और 'मोजी' (Moji) का अर्थ 'किरदार' या 'कैरेक्टर' (Character) होता है। यह मनुष्य के सार्वभौमिक मनोभावों को प्रकट करती है। इलेक्ट्रॉनिक स्क्रीन पर लिखते समय प्रयोक्ता किस मानसिक अवस्था में है, वह इसे इमोजी के द्वारा तुरंत स्पष्ट कर देता है। चूंकि मनुष्य के कुछ प्राथमिक मनोभाव–जैसे हँसना, रोना, गुस्सा होना, उबासी लेना–पूरी दुनिया में एक समान हैं, यही कारण है कि इमोजी ने भाषायी सीमाओं को तोड़कर संपूर्ण विश्व में अभूतपूर्व प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है।

9. मानक हिंदी की संरचना और वर्तनी पर प्रभाव (Impact on Standard Hindi)

बदलती सूचना-प्रौद्योगिकी ने जहाँ हिंदी को वैश्विक मंच दिया है, वहीं मानक हिंदी (Standard Hindi) की व्याकरणिक और संरचनात्मक शुद्धता पर गहरा आघात भी किया है। यहाँ 'मानक हिंदी' से हमारा तात्पर्य व्यापक हिंदी समुदाय द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकृत व्याकरणिक रूपों और उसके परिमार्जित स्वरूप से है। नव मीडिया के बेलगाम प्रयोगों ने इस मानक संरचना में कई गंभीर विरूपण और त्रुटियां उत्पन्न कर दी हैं, जिनका वर्गीकरण निम्नवत है:

9.1. बोलचाल की भाषा बनाम वर्चुअल दुनिया का द्वंद्व

नव मीडिया (जैसे फेसबुक) अपने व्यावहारिक चरित्र में अत्यधिक अनौपचारिक, निजी और स्वतंत्र होते हैं। इंटरनेट पर निरंतर अभ्यास के कारण प्रयोक्ता के अवचेतन मन में यह अनौपचारिक, शिथिल और चलताऊ भाषा स्थायी रूप से घर कर जाती है। परिणामतः, वर्चुअल दुनिया की यह व्याकरण-मुक्त भाषा धीरे-धीरे समाज की वास्तविक मानक भाषा के प्रतिमानों को दूषित करने लगती है। इसके विपरीत, ट्विटर की भाषा चूँकि सीमित अक्षरों के कारण संयत और वस्तुनिष्ठ होती है, इसलिए वह अप्रत्यक्ष रूप से भाषायी संयम का कार्य भी करती है।

9.2. वर्तनीगत एवं उच्चारण संबंधी त्रुटियां (Orthographic Errors)

हिंदी की सबसे बड़ी वैज्ञानिक विशेषता यह है कि इसकी वर्तनी पूर्णतः ध्वन्यात्मक (Phonetic) होती है, अर्थात इसे जैसा उच्चरित किया जाता है, वैसा ही लिखा जाता है। परंतु नव मीडिया पर पारंपरिक उच्चारण के विवेक का पूर्ण अभाव दिखाई देता है, जिससे मनमानी वर्तनी की बाढ़ आ गई है।

उच्चारण के प्रतिकूल वर्तनी: प्रयोक्ता शब्दों के सही उच्चारण के प्रति लापरवाह हैं।

त्रुटिपूर्ण उदाहरण:- "...सभी राजनैतिक दलों की धरकने (धड़कनें) तेज हो गयी है... चुनाव छोटे कारोबारियों के बीच **केन्द्रीत** (केंद्रित) रहने वाला है..."

संयुक्ताक्षरों एवं संयुक्त स्वरों में अशुद्धियां:

त्रुटिपूर्ण उदाहरण: "औखली में सिर तो मूसल से क्या डर" (मानक शब्द ओखली के स्थान पर औखली का प्रयोग)।

सामासिक पदों के लेखन में प्रमाद: हिंदी व्याकरण के अनुसार द्विरुक्ति या सामासिक पदों के बीच योजक चिह्न (-) अनिवार्य होता है, जिसे सोशल मीडिया पर छोड़ दिया जाता है।

त्रुटिपूर्ण उदाहरण: "कभी कभी (कभी-कभी) कमरे में आने पर..." या "जैसे जैसे (जैसे-जैसे) दिन बीत रहा है..."।

9.3. व्याकरणिक कोटियों, लिंग और वचन का दोषपूर्ण प्रयोग

सोशल मीडिया पर भाषायी अनुशासन के अभाव के कारण कारक, लिंग और वचनों के प्रयोग में भयंकर त्रुटियां देखने को मिलती हैं:

लिंग संबंधी अशुद्धि: "तुम्हारा नया कलम मुझे बहुत पसंद है" (जबकि 'कलम' स्त्रीलिंग शब्द है, अतः शुद्ध रूप 'तुम्हारी नई कलम' होना चाहिए)।

वचन और सर्वनाम का असंतुलन: "आपके इंटर्व्यू हमेशा यह बताते हैं कि..." (यहाँ 'इंटरव्यू' बहुवचन रूप में प्रयुक्त है, इसलिए सर्वनाम 'यह' के स्थान पर मानक रूप 'ये' होना अनिवार्य था)।

परसर्गों (Case Markers) का त्रुटिपूर्ण प्रयोग: "आपने अपनी योग्यता के द्वारा सब काम पूरा किया" (यहाँ 'के द्वारा' के स्थान पर सरल कारक परसर्ग 'से' का प्रयोग होना चाहिए था)।

9.4. वाक्य विन्यास, पदक्रम और प्रोक्ति (Discourse) का बिखरना

प्रोक्ति-रचना (Discourse Analysis) के सिद्धांतों के अनुसार वाक्यों का तार्किक क्रम, अर्थ की संबद्धता और संदर्भ की उपस्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। सोशल मीडिया के प्रयोक्ता इनकी पहचान में अक्सर चूक कर जाते हैं, जिससे वाक्य विन्यास बिखर जाता है।

त्रुटिपूर्ण पदक्रम का उदाहरण: "सरकार के account में पैसा देना, है यह बेवकूफी। आप दोगे ये सोच कर..." (यह वाक्य संरचना पदक्रम के नियमों का पूर्ण उल्लंघन करती है)।

प्रोक्ति दोष का उदाहरण: "अपने शहर से दूर जब इस नये शहर का बासिन्दा बना तो इतने लोग मेरे अपने हो जायेंगे इतने कम समय में ऐसा कभी नही सोच था..." (यहाँ वाक्यों का परस्पर व्याकरणिक अन्वय और विराम-चिह्नों का प्रयोग अत्यंत त्रुटिपूर्ण है)।

9.5. पूर्ण और आंशिक रोमन लिपि के अनियंत्रित उदाहरण

सोशल मीडिया पर भाषायी शुद्धता इस कदर संकट में है कि प्रयोक्ता बिना किसी संकोच के पूर्ण अथवा आंशिक रोमन लिपि का घालमेल करते हैं।

पूर्ण रोमन प्रयोग का उदाहरण: Sir meri age 18 year hor m aapki bhut bdi fan hu mere frnd meri mjak bnate h... (यह वाक्य पूरी तरह से हिंदी व्याकरण और स्वनिमिक संरचना का उल्लंघन करता है)।

आंशिक रोमन प्रयोग का उदाहरण: "कुछ लोग status पर प्रधानमंत्री को ऐसे गरियाते हैं, जैसे दिन भर बैठ कर वो इन्हीं का status पढ़ रहे हों"।

10. शोध-निष्कर्ष (Research Findings & Conclusion)

सूचना-प्रौद्योगिकी और नव मीडिया के समकालीन दौर में हिंदी भाषा के परिदृश्य का सूक्ष्म भाषावैज्ञानिक विश्लेषण करने के उपरांत निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं:

1. तकनीकी अनुकूलन और रूपांतरण: समाज और तकनीक में होने वाले तीव्र परिवर्तनों के समानांतर भाषा भी स्वयं को बदलती है। सूचना-युग में हिंदी ने स्वयं को तकनीकी रूप से अत्यंत सुदृढ़ किया है, किंतु इस प्रक्रिया में उसके बाह्य स्वरूप और वर्तनी में भारी बदलाव आए हैं।

2. बंधनों से मुक्ति और वैयक्तिकरण: नव मीडिया ने हिंदी को पारंपरिक व्याकरणिक और कड़े अकादमिक बंधनों से मुक्त करके एक 'बंधनमुक्त लोक-भाषा' का रूप दे दिया है। चूंकि यह लोगों का व्यक्तिगत मीडिया है, इसलिए भाषा का स्वरूप भी अत्यधिक वैयक्तिक और आत्मनिष्ठ होता जा रहा है।

3. समाज-भाषायी विविधता (Sociolinguistic Diversity): सोशल मीडिया पर प्रयोक्ताओं की आयु, लिंग, भाषा, व्यवसाय और आर्थिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर भाषा विशिष्ट रुख अख्तियार करती है, जिससे डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर वर्ग-आधारित भाषायी स्वरूप का निर्माण हो रहा है।

4. स्थान-जनित अतिरिक्त संक्षेपण: विभिन्न मंचों पर संरचनात्मक स्तर पर अपनी बात कहने के लिए एक तय और सीमित स्थान (Space Restriction) उपलब्ध होता है। अतः स्थान की कमी के कारण भाषा का अतिरिक्त संक्षिप्तीकरण हो रहा है, जिसमें भविष्य में भावचिह्नों (इमोजी) के बढ़ते प्रभुत्व से और अधिक सिकुड़ने की पूरी गुंजाइश है।

5. साहित्यिक पुनर्जागरण और रीमिक्स संस्कृति: नकारात्मक भाषायी प्रभावों के बावजूद, नव मीडिया हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं के संरक्षण, संवर्धन और वैश्विक प्रसार में एक अद्‌वितीय उत्प्रेरक सिद्‌ध हुआ है। इसके माध्यम से साहित्य के क्षेत्र में 'रीमिक्स संस्कृति' को बढ़ावा मिल रहा है, जिसके तहत पारंपरिक कथाओं की आधुनिक रचनात्मक पुनर्कल्पना की जा रही है।

11. भावी शोध की दिशा और डिजिटल कॉर्पस की आवश्यकता (Future Scope of Research)

सभी माध्यमों की अपनी कुछ अंतर्निहित विशेषताएं और कमियां होती हैं, निश्चित तौर पर नव मीडिया की भी हैं। प्रस्तुत शोध-आलेख यह संस्तुति करता है कि यदि भविष्य में फेसबुक, ट्‌विटर या अन्य नव मीडिया मंचों के प्रबंधकीय तंत्र से अनुमति और सहयोग प्राप्त हो और डेटा संबंधी निजता (Data Privacy) की समस्याओं का उचित विधिक समाधान कर लिया जाए, तो इन मंचों पर उपलब्ध अरबों शब्दों के हिंदी डेटा का एक विशाल और प्रामाणिक डिजिटल हिंदी कॉर्पस (Digital Hindi Corpus) तैयार किया जा सकता है।

इस कॉर्पस के कंप्यूटर-आधारित और एआई (AI) संचालित भाषावैज्ञानिक विश्लेषण से हिंदी भाषा के स्वरूप और उसकी आंतरिक संरचना पर पड़ने वाले प्रभावों का एक सम्यक और प्रामाणिक अध्ययन संभव होगा। इसके माध्यम से हम 'नेट-स्पीक' (Net-Speak) अर्थात डिजिटल माध्यमों पर प्रयुक्त होने वाली समकालीन हिंदी के वास्तविक 'भाषायी व्यवहारशास्त्र' (Linguistic Pragmatics) को सुव्यवस्थित ढंग से समझ और समझा सकेंगे। यह समझ भविष्य में हिंदीभाषी समाज को अपनी भाषायी अस्मिता, सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक सरोकारों को डिजिटल युग में अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए एक ठोस, वैज्ञानिक आधार प्रदान करेगी।

12. सहायक ग्रंथ सूची (Bibliography / References)

1. मिश्रा, डॉ. स्मिता (संपा.). (2020). "डिजिटल क्रांति और हिन्दी". नई दिल्ली: अनंग प्रकाशन.
2. ओसीनी, फ्रांसिस्को एवं रविकांत. (2022). "हिंग्लिश लाइव: लैंग्वेज मिक्सिंग एक्रास मीडिया". ओरिएंट ब्लैकस्वान.
3. क्रिस्टल, डेविड. (2001). "लैंग्वेज एंड द इंटरनेट". न्यूयार्क: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
4. चतुर्वेदी, जगदीश्वर. (2014). "इंटरनेट साहित्यालोचना और जनतंत्र". नई दिल्ली: स्वराज प्रकाशन.
5. नारायण, सुमित्रा सेन एवं नारायण, शालिनी (सं.). (2009). "इंडिया कनेक्टेड: न्यू-मीडिया के प्रभावों की समीक्षा". नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन.
6. श्रेम, विल्बर. (1964). "मास मीडिया एंड नेशनल डेवलपमेंट". स्टैनफोर्ड: स्टैनफोर्ड विश्वविद्‌यालय प्रेस.
7. बेकरमैन. "द क्वाइट बिफोर: ऑन द अनएक्सपेक्टेड ऑफ रेडिकल आइडियाज".
8. मंडल, दिलीप एवं यादव, गीता. (2021). "अन-सोशल नेटवर्क". नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
9. शर्मा, क्षमा. (2002). "पत्रकारिता और साहित्य". नई दिल्ली: श्री नटराज प्रकाशन.
10. राजकिशोर (संपा.). (2009). "MEDIA और हिन्दी साहित्य". नई दिल्ली: किताबघर प्रकाशन.
11. रविकांत. (2016). "मीडिया की भाषा-लीला". नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
12. सक्सेना, अम्बरीष (संपा.). (2015). "मीडिया की नई चुनौतियां". नई दिल्ली: कनिष्क पब्लिशर्स.
13. पचौरी, सुधीश. (2000). "मीडिया और साहित्य". नई दिल्ली: राजसूर्य प्रकाशन.
14. राजकिशोर. (2007). "समकालीन पत्रकारिता: मूल्यांकन और मुद्‌दे". नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
15. मिश्रा, डॉ. स्मिता. (2008). "मीडिया और साहित्य". नई दिल्ली: नाथ India पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स.
16. रॉबिन, जेफ्री. (2006). "भारत की समाचार पत्र क्रांति". नई दिल्ली: भारतीय जनसंचार संस्थान.
17. वैदिक, वेदप्रताप. (1992). "हिन्दी पत्रकारिता: विविध आयाम". दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग House.

18. पचौरी, सुधीश. (2006). "उत्तर आधुनिक मीडिया विमर्श". नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
19. 'जाफरावादी', डॉ. सतीश शर्मा. (2013). "संचार माध्यमों की भाषा और नई हिन्दी". नई दिल्ली: तक्षशिला प्रकाशन.
20. कुंदरा, डॉ. बलबीर. (2020). "सम्प्रेषण कला". नई दिल्ली: हंस प्रकाशन.
21. रानी, डॉ. संगीता. (2018). "सोशल मीडिया: संभावनाएं और चुनौतियां". नई दिल्ली: श्री नटराज प्रकाशन.
22. चतुर्वेदी, विभूति नारायण. (2007). "मीडिया टुडे: लेखन एवं संपादन". दिल्ली: फ्लेयर बुक्स प्रकाशन.
23. मिश्रा, प्रो. नरेश. "मीडिया लेखन: भारतीय चिंतन, दर्शन और साहित्य".
24. मृगेश, डॉ. माणिक. (1999). "समाचार पत्रों की भाषा". नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
25. झाला, डॉ. जयसिंह बी. (2014). "सोशल मीडिया एवं समाज". जयपुर: रावत प्रकाशन.
26. विलियम्स, रेमंड (अनु. प्रमोद जा एवं सत्यम वर्मा). "संचार माध्यमों का वर्ग चरित्र".
27. कालिया, रविन्द्र (संपा.). (2014). "इलेक्ट्रानिक मीडिया और चुनौतियां". नई दिल्ली: रुचिका प्रिंटर्स.
28. चतुर्वेदी, जगदीश्वर. (1996). "जनमाध्यम और मास-कल्चर". नई दिल्ली: सारांश प्रकाशन.

शोध-पत्र / आलेख संदर्भ (Journals & Articles):

1. दाधीच, बालेन्दु शर्मा. "न्यू मीडिया: न पत्रकारिता तक सीमित, न कम्प्यूटर तक".
2. मित्रा, अर्चना. (2011). "न्यू मीडिया एंड कन्वर्जेंस: ए डेवलपमेंट कम्यूनिकेशन पर्सपेक्टिव".
3. शर्मा, प्रो. कुमुद. "सोशल मीडिया संप्रेषण के नए आयाम और हिन्दी". "स्मारिका: 12वां विश्व हिन्दी सम्मेलन", पृ. 35.
4. मिश्र, अच्युतानंद. "परंपरागत ज्ञान को कृत्रिम मेधा और संचार क्रांति की चुनौतियां". "स्मारिका: 12वां विश्व हिन्दी सम्मेलन", पृ. 95.
5. 'अंशु', आशीष कुमार. "सावधानी जाने से ही दुर्घटना संभावित है: पत्रकारिता का बदलता स्वरूप और न्यू मीडिया" (संपा. डॉ. हरीश अरोड़ा), पृ. 64-65.
6. शैलेश. "समकालीन हिंदी साहित्य की उभरती प्रवृत्तियाँ न्यू मीडिया के सन्दर्भ में".
7. शैलेश. "न्यू मीडिया की नजर में हिन्दी का वैश्वीकरण".
8. राय, श्री रामबहादुर. "हिन्दी पत्रकारिता में संवाद की आवश्यकता". "स्मारिका: 12वां विश्व हिन्दी सम्मेलन", पृ. 29.
9. मिश्रा, डॉ. नरेन्द्र. "लोकतांत्रिक व्यवस्था में मीडिया का अवदान". "स्मारिका: 12वां विश्व हिन्दी सम्मेलन", पृ. 7.
10. द्विवेदी, प्रो. संजय. "डिजिटल क्रांति से हिंदी को मिली नई पहचान". "स्मारिका: 12वां विश्व हिन्दी सम्मेलन", पृ. 72.

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 एवं गुणात्मक प्राथमिक शिक्षा

अल्पना वर्मा*
डॉ. चंद्रजीत यादव**

प्रस्तावना:

भारत में प्राथमिक शिक्षा आजादी के बाद से ही अपनी विकास की सीढ़ियाँ चढ़ना प्रारम्भ कर दिया। दुनियां के अन्य सभी विकासील देशों के तरह भारत ने भी अपने बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के उत्तरदायित्व को स्वीकार किया। शिक्षा के इसी महत्व को स्वीकार करते हुए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाते हुए इसे राज्य का नीति–निदेशक सिद्धांत बनाया गया। राज्य को यह जिम्मेदारी दी गयी कि संविधान के लागू किये जाने के 10 वर्ष के भीतर 14 वर्ष तक की आयु के समस्त बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराये। इस शिक्षा का लक्ष्य केवल साक्षरता या क्रियात्मक गणितीय योग्यता प्रदान करना ही नहीं था अपितु बालक के न्यूनतम अधिगम स्तर प्रदान करते हुए शिक्षा का सार्वजनिकरण करना भी था। जिससे संविधान के अन्दर निहित प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की संकल्पना के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की प्रथम जनगणना 1951 के अनुसार भारत की साक्षरता दर 18. 33 प्रतिशत तथा उत्तर प्रदेश में साक्षरता दर 12.02 प्रतिशत थी। भारत की साक्षरता दर निम्न होने के कारण भारत सरकार ने प्राथमिक शिक्षा के सार्वजिनिकरण के उद्देयेश्य से संविधान में वर्णित अनुच्छेद 45 को समस्त राज्यों को लागू किया, लेकिन इस अनुच्छेद के लागू होने के बाद भी शिक्षा का लक्ष्य पूरा नहीं हो पाया। भारत में सभी को शिक्षित करने एवं गुणात्मक शिक्षा प्राप्त कराने का प्रयास आजादी के पूर्व से ही चला आ रहा है। समय–समय पर अनेकों आयोगों एवं समितियों का गठन किया गया, परन्तु कतिपय कारणों से उस लक्ष्य को आज भी प्राप्त नहीं कर पाये हैं। इन सभी को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने सभी को शिक्षित करने के लक्ष्य से शिक्षा को बालक का मौलिक अधिकार घोषित किया तथा शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 को पूरे देश में लागू किया। इस अधिनियम के लागू हो जाने के उपरान्त यह आशा की गई कि आने वाले वर्षों में सभी को समुचित एवं गुणात्मक शिक्षा प्राप्त हो सकेगी। परन्तु इस अधिनियम के बारे में जब तक शिक्षक, अभिभावक, छात्र तथा इससे सम्बन्धित समस्त हितधारक पूर्ण रूप से जागरूक नहीं होंगे तब तक यह अधिनियम अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकेगा। इस अधिनियम को लागू हुए लगभग पंद्रह वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। अतएव यह जानने एवं अध्ययन करने की आवश्यकता है कि अधिनियम के क्रियान्वयन के सन्दर्भ में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति क्या है ? अतः इन्हीं तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए इस शोध में उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद में शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 के सन्दर्भ में गुणात्मक प्राथमिक शिक्षा की स्थिति का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

उद्देश्य:

1. उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के आलोक में गुणात्मक प्राथमिक शिक्षा की स्थिति का विद्यर्थियों की गणित विषय में उपलब्धि अध्ययन करना।
2. उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के आलोक में गुणात्मक प्राथमिक शिक्षा की स्थिति का विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा में उपलब्धि अध्ययन करना।

शोध विधि:

प्रस्तुत अध्ययन हेतु वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

सीमांकन:

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन केवल उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद तक सीमित था।
2. प्रस्तुत शोध अध्ययन में "उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद, प्रयागराज" द्वारा संचालित प्राथमिक

* शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र विभाग, महाकौशल विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)
** प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, महाकौशल विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

विद्यालयों को ही सम्मिलित किया गया।

3. प्रस्तुत शोध अध्ययन में उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद के परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों के केवल कक्षा–5 के सत्र 2023 –24 में अध्ययनरत विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।
4. प्रस्तुत शोध अध्ययन में गुणात्मक प्राथमिक शिक्षा के अंतर्गत केवल गणित एंव हिन्दी भाषा में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को ही सम्मिलित किया गया है।

प्रदत्त विश्लेषण:

उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के विद्यार्थियों की गणित विषय एवं हिंदी भाषा में उपलब्धि की स्थिति का अध्ययन करने हेतु चार विकास खण्ड क्षेत्रों यथा बेहटा, लहरपुर, बिसवां व रामपुर मथुरा में विभक्त कर अध्ययन किया गया।

गणित विषय में उपलब्धि एवं गुणात्मक प्राथमिक शिक्षा:

प्रस्तुत शोध अध्ययन का प्रथम उद्देश्य "उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद में शिक्षा का अधिकार अधिनियम –2009 के आलोक में गुणात्मक प्राथमिक शिक्षा की स्थिति का विद्यार्थियों की गणित विषय में उपलब्धि के सन्दर्भ में अध्ययन करना" था। विद्यार्थियों की गणित विषय में शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करने हेतु शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित "गणित विषय उपलब्धि परीक्षण" का प्रयोग किया गया था। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के गणित विषय के उपलब्धि के प्राप्तांको का विकास खण्डवार प्रतिशतांक, मध्यमान, मानक विचलन तथा विचलनशीलता गुणांक का मान तालिका – 4.1 में प्रस्तुत है।

तालिका – 4.1: उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के गणित विषय के प्राप्तांको के प्रतिशतांक, मध्यमान, मानक विचलन एवं विचलन शीलता गुणांक

प्रतिशतांक	विकास खण्ड क्षेत्र बेहटा के विद्यार्थी	विकास खण्ड क्षेत्र लहरपुर के विद्यार्थी	विकास खण्ड क्षेत्र बिसवां के विद्यार्थी	विकास खण्ड क्षेत्र रामपुर मथुरा के विद्यार्थी	सीतापुर जनपद विद्यार्थी
P90	81	79	83	86	82.25
P80	66	69	78	79	73
P70	52	65	75	72	66
P60	46	57	63	66	58
P50	38	52	56	59	51.25
P40	34	31	26	32	30.75
P30	30	26	19	28	25.75
P20	27	21	15	23	21.5
P10	22	18	11	19	17.5
मध्यमान	44	46.44	47.33	51.56	47.33
मानक विचलन	19.45	22.82	31.53	26.04	24.05
विचलन शीलता गुणांक	44.2	49.2	66.7	50.5	50.8

तालिका – 4.1 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश राज्य में सीतापुर जनपद के प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की गणित विषय में उपलब्धि का मध्यमान 47.33 था, जबकि सीतापुर जनपद के विकास खण्ड क्षेत्र बेहटा, लहरपुर, बिसवां व रामपुर मथुरा में स्थित प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की गणित विषय में उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 44, 46.44, 47.33 व 51.56 थी। इसके साथ ही, सम्पूर्ण सीतापुर जनपद एवं उसके चारों विकास खण्ड क्षेत्रों – बेहटा, लहरपुर, बिसवां व रामपुर मथुरा के प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की गणित विषय में उपलब्धि का विचलनशीलता गुणांक 44.2 से

66.7 के मध्य पाया गया। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि यहां सम्पूर्ण तथा उसके चारों विकास खण्ड क्षेत्रों के प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की गणित विषय में उपलब्धि औसत तथा विचलनशीलता गुणांक अधिक नहीं पाया गया, जो यह दर्शाता है कि सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश एवं उसके चारों विकास खण्ड क्षेत्रों – बेहटा, लहरपुर, बिसवां व रामपुर मथुरा के प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की गणित विषय में उपलब्धि स्तर संतोषजनक था।

हिंदी भाषा में उपलब्धि एवं गुणात्मक प्राथमिक शिक्षा:

प्रस्तुत शोध अध्ययन का द्वितीय उद्देश्य "उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद में शिक्षा का अधिकार अधिनियम –2009 के आलोक में प्राथमिक गुणात्मक शिक्षा की स्थिति का विद्यार्थियों की हिंदी भाषा में उपलब्धि के सन्दर्भ में अध्ययन करना" था। विद्यार्थियों की हिंदी भाषा में उपलब्धि का अध्ययन करने हेतु शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित 'हिंदी भाषा उपलब्धि परीक्षण' का प्रयोग किया गया था। उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के हिंदी भाषा में उपलब्धि के प्राप्तांको का विकास खण्ड–वार प्रतिशतांक, मध्यमान, मानक विचलन तथा विचलनशीलता गुणांक का मान तालिका – 4.2 में प्रस्तुत है।

तालिका – 4.2: उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के हिंदी भाषा के प्राप्तांको के प्रतिशतांक, मध्यमान, मानक विचलन एवं विचलन शीलता गुणांक

प्रतिशतांक	विकास खण्ड क्षेत्र बेहटा के विद्यार्थी	विकास खण्ड क्षेत्र लहरपुर के विद्यार्थी	विकास खण्ड क्षेत्र बिसवां के विद्यार्थी	विकास खण्ड क्षेत्र रामपुर मथुरा के विद्यार्थी	सीतापुर जनपद के विद्यार्थी
P90	82	85	78	89	83.5
P80	77	75	71	76	74.75
P70	68	71	69	73	70.25
P60	59	69	63	66	64.25
P50	50	53	58	59	55
P40	37	39	47	46	42.25
P30	28	29	34	37	32
P20	19	21	27	29	24
P10	11	14	21	17	15.75
मध्यमान	47.89	50.67	52	54.67	51.42
मानक विचलन	23.50	25.92	20.67	23.44	23.95
विचलन शीलता गुणांक	49.09	51.17	39.75	43.79	46.59

तालिका – 4.2 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश राज्य में सीतापुर जनपद के प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की हिंदी भाषा में उपलब्धि का मध्यमान 51.42 थी, जबकि सीतापुर जनपद के विकास खण्ड क्षेत्र बेहटा, लहरपुर, बिसवां व रामपुर मथुरा में स्थित प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की हिंदी भाषा में उपलब्धि का मध्यमान क्रमशः 47.89, 50.67, 52 व 54.67 है। इसके साथ ही, सम्पूर्ण सीतापुर जनपद एवं उसके चारों विकास खण्ड क्षेत्रों – बेहटा, लहरपुर, बिसवां व रामपुर मथुरा के प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की हिंदी भाषा में उपलब्धि का विचलनशीलता गुणांक 39.75 से 51.17 के मध्य है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि यहां सम्पूर्ण तथा उसके चारों विकास खण्ड क्षेत्रों के प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की हिंदी भाषा में उपलब्धि औसत तथा विचलनशीलता गुणांक बहुत अधिक नहीं पाया गया, जो यह दर्शाता है कि सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश एवं उसके चारों विकास खण्ड क्षेत्रों – बेहटा, लहरपुर, बिसवां व रामपुर मथुरा के प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की हिंदी भाषा में उपलब्धि स्तर संतोषजनक था।

निष्कर्ष:

उत्तर प्रदेश राज्य के सीतापुर जनपद में शिक्षा का अधिकार अधिनियम – 2009 के सन्दर्भ में प्राथमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की गणित विषय में उपलब्धि की स्थिति संतोषजनक पायी गयी।

संदर्भ-सूची

1. भारत सरकार. (1950). **भारत का संविधान**. नई दिल्ली: विधि एवं न्याय मंत्रालय.
2. अग्रवाल, जे. सी. (2021). **आधुनिक शिक्षा का विकास एवं नियोजन** (20वाँ संस्करण). नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस.
3. भारत के महापंजीयक एवं जनगणना आयुक्त का कार्यालय. (1951). **भारत की जनगणना, 1951**. नई दिल्ली: भारत सरकार.
4. शिक्षा आयोग (1964–66). (1966). **शिक्षा एवं राष्ट्रीय विकास (कोठारी आयोग प्रतिवेदन)**. नई दिल्ली: शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार.
5. भारत सरकार. (1986; संशोधित 1992). **राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 (1992 के संशोधनों सहित)**. नई दिल्ली: मानव संसाधन विकास मंत्रालय.
6. भारत सरकार. (2009). **बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009)**. नई दिल्ली: विधि एवं न्याय मंत्रालय.